शोधादर्श

४०

घनेराव (जिला पाली) में स्थित प्रसिद्ध महावीर मन्दिर

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

मथुरा से प्राप्त आयागपट्ट

आद्य सम्पादक : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
पूर्व प्रधान सम्पादक : (स्व.) श्री अजित प्रसाद जैन
पूर्व सम्पादक (स्व.) श्री रमा कान्त जैन
मार्गदर्शक डॉ. शशि कान्त
सम्पादक श्री नलिन कान्त जैन
सह–सम्पादक : श्री सन्दीप कान्त जैन
: श्री अंशु जैन 'अमर'
: सौ. डॉ. अलका अग्रवाल

प्रकाशक
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004, टेलीफोन सं. (0522) 2451375
ई–मेल : shodhadarsh@gmail.com

णाणं णरस्स सारं – सच्चं लोयम्मि सारभूयं
ज्ञान ही मनुष्य जीवन का सार है
सत्य ही लोक में सारभूत तत्त्व है

शोधादर्श - 80

वीर निर्वाण संवत् 2541 दिसम्बर 2014 ई.

विषय क्रम

1	सम्पादकीय	श्री नलिन कान्त जैन	4
2	गुरुगुण–कीर्तन : जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'	श्री रमा कान्त जैन	5–12
3	जैन धर्म की प्राचीनता	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	13–15
4	राजा शिव प्रसाद (जैन) 'सितारे हिन्द'	श्री अजित प्रसाद जैन	16–18
5	जैन स्थापत्य	डॉ. शशि कान्त	19–23
6	नमो वीतरागं (पद्य)	श्री भरतेश कुमार जैन	23
7	शोध सारांश जैन मन्दिरों की स्थापत्य कला – विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. (श्रीमती) निधि जौहरी	24–30
8	खन्दारगिरि की जैन गुफायें	श्री अजीत प्रताप सिंह	31–33
9	रे मन क्यों व्यथित (पद्य)	श्री राजीव कान्त जैन	34

10	सप्त चिन्तन–कण (पद्य)	डॉ. परमानन्द जड़िया	35
11	बेटों के बाप (पद्य)	श्री अमर नाथ	36–37
12	श्री नरेन्द्र मोदी जी के प्रति (पद्य)	श्री सुरेश कुमार 'आवारा नवीन'	37
13	सेवा के नाम पर घोटाला निन्दनीय	श्री भूरचंद जैन	38–39
14	शिथिलाचार के प्रति जागरूकता अपेक्षित	श्री रवीन्द्र 'मालव'	40–43
15	आचार्य तुलसी की अनुपम देन 'अणुव्रत'	डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव	44–49
16	परिग्रह से कैसी प्रभावना?	श्री अजित जैन 'जलज'	50–52
17	साहित्य सत्कार	डॉ. शशि कान्त	53–60
	Prakrit and Jainism in Interdisciplinary Perspective; The World Around; Jain Tirthankaras : Historicity and Antiquity; जिन–गुणानुवाद–मंजरी; आत्मवृत्तम्; बुन्देलखण्ड जैन तीर्थ दर्शन; भूधर शतक; विनय बोधि कण; इष्टोपदेश; मानव धर्म; गिरनार–वन्दन; मूल्य और मूल्य चिन्तन; कर्म विचारे कौन; विलक्षण दशलक्षण; बढ़े सो पावे; बढ़ते भगवान घटते भक्त; प्राकृत का जैन आगम साहित्य : एक विमर्श; प्राकृत एवं संस्कृत साहित्य के विभिन्न वर्गों से सम्बन्धित जैन आलेख; भारतीय संस्कृति के मूल तत्व; डॉ. नेमिचंद जैन की कृतियां; परिकमा		
18	आभार		61
19	अभिनन्दन		61–63
20	शोक संवेदन		63
21	समाचार विविधा		64–65
22	पाठकों के पत्र श्री अजित जैन 'जलज' डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव श्री कैलाश नारायण टन्डन डॉ. चेतन प्रकाश पाटनी श्री प्रेमचंद जैन		66–70

श्री बालकवि बैरागी
श्री बी.डी. अग्रवाल
मुनि महेन्द्र सागर जी
डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल

23 आवश्यक सूचना 71
27 शोधादर्श के अभिदाता 72

चित्र परिचय

कवर पृ. 1

घनेराव (जिला पाली) में स्थित प्रसिद्ध महावीर मन्दिर।

यह मन्दिर 10वीं शताब्दी में स्थापत्य की मारु–गुर्जर शैली में निर्मित हुआ था। यह सान्धार–प्रासाद के रूप में निर्मित है।

कवर पृ. 2

मथुरा से प्राप्त आयाग्पट्ट।

इस पर स्तूप का आकार चित्रित है। इस शिलापट्ट को दूसरी शताब्दी ईस्वी में निर्ग्रन्थ–अर्हतायतन में लोणशोभिका की पुत्री वासु ने स्थापित कराया था। स्तूप का आकार लम्बोतर है, जो जैन स्तूप–स्थापत्य की विशिष्टता सूचित करता है।

कवर पृ. 3

1 **ग्यारसपुर (जिला विदिशा) में मालादेवी मन्दिर।**

यह मन्दिर 9वीं–10वीं शताब्दी में सान्धार–प्रासाद शैली में निर्मित हुआ था। इसका शिखर नागर शैली में निर्मित है जो विशेष रूप से दर्शनीय है।

2 **विजयनगर साम्राज्य की राजधानी हम्पी में गणिगित्ती मन्दिर।**

इस मन्दिर का निर्माण 1385 ई. में राजा हरिहर द्वितीय के राज्यकाल में मंत्री इरुग द्वारा कराया गया था। इसमें मानस्तम्भ प्रदर्शित है और उसी पर अभिलेख अंकित है। यह कुन्थुजिननाथ चैत्यालय के नाम से विख्यात था।

✦✦✦

सम्पादकीय

शोधादर्श का **80वां** अंक सुधि पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता है। इस अंक के साथ **शोधादर्श** 28 वर्ष की यात्रा कर चुका है। सुधि पाठकों का और विद्वान लेखकों का जो वैचारिक सहयोग हमें प्राप्त होता रहा है उसी से प्रेरणा प्राप्त कर हम इस साहित्यिक और शोध–आश्रित कार्यक्रम को चलाते रह सके हैं।

कीर्तिशेष बाबाजी श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, छोटे बाबाजी श्रद्धेय श्री अजित प्रसाद जैन और चाचाजी श्री रमा कान्त जैन के शोध–समन्वित, विचार–उद्‌बोधक एवं प्रेरणास्पद लेख इस अंक में भी पूर्व अंकों की भांति सम्मिलित हैं। हमारा प्रयास है कि कदाग्रह–निरपेक्ष तथा पंथ या आम्नाय–निरपेक्ष शोध सामग्री तथा सामाजिक चेतना को उद्वेलित करने वाली सामग्री हम **शोधादर्श** के माध्यम से प्रस्तुत करते रहें।

इस अंक में जैन स्थापत्य से सम्बंधित विशिष्ट सामग्री दी जा रही है। 'साहित्य सत्कार' आदि अन्य स्थायी स्तम्भ भी सम्मिलित हैं।

जैसा कि पहले भी हमने निवेदन किया है, विद्वान लेखकों से पुनः निवेदन है कि वे अपने अप्रकाशित शोध–सारांश, आवश्यक संदर्भों सहित, चार पृष्ठों में टंकित, उपलब्ध करायें।

हमारी समिति के आजीवन सदस्य श्री धनेन्द्र कुमार जैन गत दो वर्ष से अस्वस्थ चल रहे हैं तथा उपाध्यक्ष श्री महेन्द्र प्रसाद जैन पिछले एक वर्ष से डायलिसिस पर चल रहे हैं। इस दिसम्बर माह में समिति के आजीवन सदस्य श्री दीपक जैन का गजियाबाद में आतों का आप्रेशन हुआ, श्री निर्मल कुमार जैन सेठी का दिल्ली में हृदय का आप्रेशन हुआ और अध्यक्ष श्री लूण करण नाहर जैन की आंख का आप्रेशन हुआ – यह संतोष की बात है कि आप्रेशन सफल हुए और सभी यथोचित स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं। हम अपने सभी साथियों के स्वस्थ होने की प्रार्थना करते हैं।

सम्पादक मंडल के सभी सहयोगी सदस्यों के प्रति, तथा उन सभी पाठकों व लेखकों को उनके द्वारा प्रदत्त आर्थिक व वैचारिक सहयोग के लिए, हम अपना आभार व्यक्त करते हैं।

नलिन कान्त जैन

31–12–2014 **सम्पादक**

वर्तमान जैन साहित्य–संसार के भीष्मपितामह
जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

– श्री रमा कान्त जैन

(स्मृतिशेष श्री रमा कान्त जैन ने श्री जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर' की 125वीं जन्म जयंती के उपलक्ष में **शोधादर्श–49** – मार्च 2003 – में गुरुगुण–कीर्तन के स्तम्भ में उनका स्मरण किया था। 20–12–2014 को उनकी 137वीं जन्म जयंती और 22 दिसम्बर को 46वीं पुण्यतिथि के उपलक्ष में मुख्तार साहब के जीवन और कृतित्व का स्मरण किया जाना समयोचित होगा। रमा कान्त जी के उक्त आलेख को संक्षिप्तीकृत करके नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है। – सम्पादक)

जीवन परिचय

प्राच्य–विद्या–महार्णव, सिद्धान्ताचार्य एवं सम्पादकाचार्य विरुदों से विभूषित पं. जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर' वस्तुतः जैन साहित्य–संसार के भीष्मपितामह रहे। उनका जन्म उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले के कस्बा सरसावा में सिंघल गोत्रीय अग्रवाल जैन चौधरी नत्थूमल और श्रीमती भूदेवी के पुत्र के रूप में मंगसिर सुदि एकादशी, सम्वत् 1934 (20 दिसम्बर, 1877 ई.) को हुआ था। पांच वर्ष की वय में उर्दू–फारसी से इनकी शिक्षा का श्रीगणेश हुआ। तदनन्तर हकीम उग्रसैन की पाठशाला में हिन्दी–संस्कृत पढ़ी। धर्म भाव से जैन शास्त्र भी पढ़ने लगे। फालतू समय में पोस्ट मास्टर बालमुकुन्द से अंग्रेजी की प्राइमर भी पढ़ डाली। कस्बे में खुले नये अंग्रेजी स्कूल, जिसमें पढ़ाने को बाहर से मास्टर जगन्नाथ बुलाये गये थे, में पांचवी क्लास तक पढ़कर उन्होंने गवर्नमेन्ट हाईस्कूल सहारनपुर में प्रवेश लिया और नवीं कक्षा तक वहां पढ़ते रहे। प्रतिदिन जैन शास्त्रों का पाठ करने वाले इन धर्मनिष्ठ युवा छात्र ने बोर्डिंग हाउस में अपने कमरे के बाहर, शास्त्रों की विनय की दृष्टि से, पट्टिका लगा रखी थी 'None is allowed to enter with shoes'. एक दिन एक मुसलमान छात्र जबर्दस्ती जूता पहने इनके कमरे में घुस आया जिसे उन्होंने धक्का देकर बाहर कर दिया। नये आये हेडमास्टर ने इस मामले में उनके साथ न्याय नहीं किया, तब प्रतिवाद स्वरूप उन्होंने स्कूल छोड़ दिया और 1899 ई. में एण्ट्रेन्स परीक्षा प्राइवेट पास की। अपने हेडमास्टर साहब से इसलिये भी वह रुष्ट थे कि उसने इन्हें दशलक्षण पर्व में शास्त्र पढ़ने हेतु सरसावा, जहां जिन

मंदिर में वह छोटी उम्र से ही शास्त्र वाचन करते थे, जाने के लिए छुट्टी नहीं दी थी। यद्यपि वह बिना छुट्टी के चले गये और उसके लिये जुर्माना भरना भी स्वीकार किया।

पढ़ाई करते समय ही 16 वर्ष की किशोरावस्था में लगभग 1893 ई. में उनका विवाह तीतरों के मुंशी होशयार सिंह की सुपुत्री से हो गया। 7 अक्टूबर, 1899, को सरसावा में उनके पहली पुत्री हुई जिसका नाम उन्होंने सन्मतिकुमारी रखा। वह प्लेग से 24 जनवरी, 1907, को देवबन्द में कालकवलित हो गई। तदनन्तर 7 दिसम्बर, 1917, को सरसावा में दूसरी पुत्री विद्यावती ने जन्म लिया। जब वह सवा तीन माह की बच्ची थी उसकी मां अर्थात् मुख्तार साहब की पत्नी 16 मार्च, 1918, को इस संसार से कूच कर गई और 28 जून, 1920, को क्रूर काल ने मोतीझारे के बहाने उस बच्ची को भी छीन मुख्तार साहब को 42 वर्ष की वय में नितान्त एकाकी कर दिया। अपनी पुत्रियों से उन्हें इतना लगाव रहा कि कालान्तर में उनकी स्मृति में आकर्षक बाल ग्रन्थमाला के प्रकाशन हेतु 'सन्मति–विद्या–निधि' स्थापित की।

एण्ट्रेन्स परीक्षा उत्तीर्ण करते ही जीविका की समस्या सामने आई। इधर–उधर नौकरी तलाश की। मन माफिक काम नहीं मिला तो नवम्बर 1899 ई. में बम्बई प्रान्तिक सभा में वैतनिक उपदेशकी ग्रहण कर ली, किन्तु वह उनकी अन्तरात्मा को रास नहीं आई और डेढ़ माह बाद ही उसे छोड़ दिया। स्वतन्त्र रोजगार की दृष्टि से 1902 ई. में मुख्तारी की परीक्षा पास की और सहारनपुर में प्रैक्टिस प्रारंभ की। 1905 ई. में वह देवबन्द चले आये और वहां 11 फरवरी, 1914, तक मुख्तारी करते रहे। सन् 1914 में मुख्तारी छोड़ने के उपरान्त वह खुद–मुख्तार रहे। जीवन के अंतिम वर्षो में वह अपने भतीजे डॉ. श्रीचंद संगल के पास एटा आकर रहने लगे और वहीं 91वें वर्ष 2 दिन की वय पाकर 22 दिसम्बर, 1968 ई., को उनका महाप्रयाण हुआ।

लेखन–सम्पादन

सरसावा की जैन पाठशाला में पढ़ते समय ही किशोर जुगलकिशोर में लेखन प्रवृत्ति प्रस्फुटित हो चली थी। 8 मई, 1896, के **'जैन गजट'** (देवबन्द) में, जब वह कक्षा 8 के छात्र थे, उनका पहला लेख, जो जैन कालेज की स्थापना के समर्थन में था, छपा था। उस लेख पर सम्पादक

सूरजभान वकील ने यह टिप्पणी अंकित की थी – "लाला जुगलकिशोर विद्यार्थी सरसावा जिला सहारनपुर का लेख अवश्य पढ़िये।" यह उस काल की हिन्दी पत्रकार कला का एक रोचक नमूना है। तदनन्तर **'जैन गजट'** में प्रायः उनके लेख प्रकाशित होते रहे। 1 जुलाई, 1907, को इस साप्ताहिक पत्र के सम्पादन का भार उन्हें मिला जिसका निर्वहन वह 31 दिसम्बर, 1909, तक करते रहे। स्व संपादित प्रथम अंक में मात्र मंगलाचरण स्वरूप एक लेख उन्होंने लिखा। वस्तुतः तब वह लेखक ही थे, सम्पादनकला उनमें अंकुरित हो रही थी। अपने सम्पादन में उन्होंने तीन बातों पर विशेष ध्यान दिया – भाषा–संशोधन, सुधार–भावना और प्रमाण–संग्रहात्मकता। 1 सितम्बर, 1907, के अग्रलेख में उन्होंने पत्रों में प्रकाशित होने वाले अश्लील विज्ञापनों का विरोध किया। सम्भवतया विज्ञापनों के संशोधन पर देश में सबसे पहले आवाज उठाने वाले सम्पादक वही थे। उसी अंक में 'हर्षसमाचार' शीर्षक से शाकटायन–व्याकरण पर लेख छपा। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के शब्दों में "यह उनका सबसे पहला लेख है जिसकी लेखन शैली में खोजपूर्णता तो नहीं, पर प्राचीन साहित्य के अनुसंधान के प्रति उनके मन में बढ़ती अभिरुचि का निर्देश है।" यह प्रवृत्ति उत्तरोत्तर विकसित होती गई। उनके सजीव सम्पादन ने **'जैन गजट'** के ग्राहकों की संख्या 300 से बढ़ाकर 1500 कर दी। उनकी सम्पादन प्रतिभा से प्रभावित पं. नाथूराम प्रेमी ने अक्टूबर 1919 में उन्हें **'जैनहितैषी'** के सम्पादन का दायित्व सौंपा जिसे उन्होंने सन् 1921 तक निभाया।

'जैनहितैषी' के बन्द हो जाने पर प्राचीन जैन साहित्य सम्बन्धी शोध–खोजपूर्ण लेखों के प्रकाशन में आये गतिरोध को दूर करने के लिये उन्होंने अपने 'समन्तभद्राश्रम' से, जिसकी स्थापना उन्होंने दिल्ली में 21 अप्रैल, 1929, को की थी, नवम्बर 1929 से एक मासिक पत्र **'अनेकान्त'** निकालना प्रारंभ किया। इसके सम्पादक वही थे। प्रथमांक में ही उन्होंने अपने पत्र की नीति घोषित कर दी जो उसके नामानुरूप "अनेकान्त–नीति" थी। उनका उद्‌देश्य इस पत्र में लोकहित की दृष्टि से लिखे गये उन लेखों को स्थान देने का था जो युक्ति पुरस्सर हों, शिष्ट–सौम्य भाषा में हों, व्यक्तिगत आक्षेपों से दूर हों और किसी धर्म विशेष का अनादर करने वाले न हों। नवम्बर 1930 में प्रथम वर्ष की 12वीं किरण निकलने के

उपरान्त आर्थिक एवं अन्य कारणों से इस पत्र का प्रकाशन 8 वर्ष तक बाधित रहा और वर्ष 2 की किरण 1 उनके सम्पादकत्व में वीर सेवा मंदिर, सरसावा, से 1 नवम्बर 1938 को प्रकाश में आ पाई। यह पत्रिका अभी जीवित है नई दिल्ली से प्रकाशित त्रैमासिक के रूप में।

मुख्तार साहब की सम्पादन कला के विषय में डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने **तीर्थंकर** पत्रिका (इंदौर) के जैन पत्र–पत्रिकाएं विशेषांक, (अगस्त–सितम्बर 1977) में लिखा था – "उन जैसा सम्पादकाचार्य जैन समाज में अब तक अन्य नहीं हुआ। **अनेकान्त** में दिये जाने वाले लेखों के साथ वे कितने धीरज और अध्यवसायपूर्वक श्रम करते थे, यह मैंने बहुत करीब से देखा है। अपनी लाल कलम से वे लेख का हुलिया (दृश्य) ही बदल देते थे, सारा लेख उनके संशोधनों से सुर्ख हो जाता था, किन्तु तारीफ यह थी कि वे लेखक के मन्तव्य एवं तथ्यों को कोई क्षति नहीं पहुंचाते थे।"

काव्य–रचना के अंकुर मुख्तार साहब में बाल्यकाल से ही रहे। सरसावा में अंग्रेजी स्कूल खुलने पर उन्होंने उसके स्वागत में 4 पंक्तियां लिखी थीं। सन् 1899 में उनके घर में बच्चा होने वाला था। महिलाओं द्वारा गाये जाने वाले पारम्परिक बधाई गीत उन्हें पसन्द नहीं आये। अतः उन्होंने स्वयं एक गीत लिखकर दिया जो मूलतः उर्दू–फारसी के छात्र रहे जुगलकिशोर के युवामन में हिन्दी के प्रति उमड़ रहे प्रेम का प्रतीक था। सन् 1900 के आसपास शोलापुर से प्रकाशित आचार्य पद्मनंदी की **'अनित्य पंचाशत्'** कृति युवाकवि जुगलकिशोर को इतनी भायी कि उन्होंने उसका पद्यानुवाद कर डाला जो 1914 ई. में **'अनित्य भावना'** नाम से प्रकाशित हुआ।

सन् 1914 में मुख्तारी छोड़ने के उपरान्त संस्कृत के विभिन्न सुभाषित ग्रन्थों से अपने मनोनुकूल सुभाषितों का चयन कर उन्होंने उनका सरल हिन्दी पद्य में भावानुवाद या छायानुवाद किया और उसमें यथास्थान स्वरुचि–अनुसार कुछ घटाया–बढ़ाया भी। तदनन्तर उन पद्यों को इस प्रकार अनुस्यूत किया कि वह **'मेरी भावना'** नामक सुमनावलि बन गई। यह उनकी जीवन–साधना का मैनीफेस्टो (घोषणापत्र) थी। सर्वप्रथम **'जैनहितैषी'** पत्रिका के अप्रैल–मई 1916 के संयुक्तांक में इसका

प्रकाशन हुआ और यह एक कालजयी रचना सिद्ध हुई। इसमें उनका कवि उपनाम 'युगवीर' देखने को मिलता है। यह कृति इतनी लोकप्रिय हुई कि पुस्तिका रूप में इसकी 20 लाख प्रतियां हिन्दी में छपने और इसका अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, गुजराती, मराठी और कन्नड़ भाषाओं में अनुवाद होने का उल्लेख कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने **अनेकान्त** (जनवरी 1944) में किया था। बंगला भाषा में भी इसका अनुवाद हुआ। आज भी सहस्रों व्यक्तियों को मानवीय भावनाओं से ओतप्रोत यह रचना कंठस्थ है और वे इसका नित्यपाठ करते हैं।

सन् 1920 में उनका एक काव्य संकलन **'वीर पुष्पांजलि'** नाम से प्रकाशित हुआ। उस समय वह समाज के घोर विरोध का सामना कर रहे थे, पर अपनी स्थापनाओं की अकाट्यता और विरोधियों की हार में उनका कितना अभंग विश्वास था यह उस पुष्पांजलि के मुखपृष्ठ पर छपी इन पंक्तियों से स्पष्ट है जिनमें उन्होंने अपने स्वभाव का परिचय भी दे डाला–

सत्य समान कठोर, न्यायसम पक्ष–विहीन,
हूंगा मैं परिहास रहित, कूटोक्ति क्षीण,
नहीं करूंगा क्षमा, इंच भर नहीं टलूंगा,
तो भी हूंगा मान्य, ग्राह्य, श्रद्धेय बनूंगा।।

सन् 1928 में पद्य में उनकी **'मेरी द्रव्य पूजा'** और 1933 में पूज्यपाद देवनन्दी की **'सिद्ध–भक्ति'** के पद्यानुवाद स्वरूप **'सिद्धिसोपान'** प्रकाशित हुई। उनकी काव्य–कृतियों का एक संकलन **'युग भारती'** नाम से प्रकाशित हुआ।

जुगलकिशोर जी की साहित्य साधना का एक अति महत्वपूर्ण पक्ष है उनके द्वारा सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार और प्राचीन जैन साहित्य का अन्य सम्प्रदायों के साहित्य के साथ तुलनात्मक गहन अध्ययन–मनन, शोध–मंथन कर सत्य को निर्भीकता से उजागर करना। सन् 1913 में उनकी **'जिनपूजाधिकार मीमांसा'** प्रकाशित हुई और सन् 1917 में **'ग्रन्थ परीक्षा'** के प्रथम एवं द्वितीय भाग, सन् 1921 में भाग तृतीय और जनवरी 1934 में भाग चतुर्थ प्रकाश में आये। **'ग्रन्थ–परीक्षा'** प्रथम भाग में उन्होंने **'उमास्वामी श्रावकाचार'**, **'कुन्दकुन्द श्रावकाचार'** और **'जिनसेन त्रिवर्णाचार'** इन तीन ग्रन्थों की परीक्षा की। द्वितीय भाग में **'भद्रबाहु संहिता'**, तृतीय में भट्टारक सोमसेन के **'त्रिवर्णाचार'**, **'धर्म परीक्षा'**,

'**अकलंक प्रतिष्ठापाठ**' और '**पूज्यपाद उपासकाचार**' का; तथा चतुर्थ में '**सूर्यप्रकाश**' ग्रन्थ का परीक्षण किया। उन्होंने अपने गहन तुलनात्मक अध्ययन और तटस्थ परीक्षण द्वारा उन ग्रन्थों में पाई गई विसंगतियों आदि पर प्रकाश डाला। भट्टारक सोमसेन के '**त्रिवर्णाचार** को तो जैन संस्कृति के आचार मार्ग के प्रतिकूल और '**सूर्यप्रकाश**' को अप्रमाणिक ठहरा दिया। उनकी यह ग्रन्थ–परीक्षा परम्परागत संस्कारों पर कड़ा कुठाराघात थी। अनेक विद्वान उससे तिलमिला उठे और उन्होंने उन्हें 'धर्मद्रोही' की उपाधि दे डाली। किन्तु उससे अविचलित रह वह अपने कार्य में लगे रहे। अपने गहन अध्ययन द्वारा उन्होंने '**जैनाचार्यो तथा जैन तीर्थंकरों में शासन भेद**' नामक जो लेखमाला प्रकाशित की उसने तो कोहराम मचा दिया। उसके विरुद्ध भी उछलकूद तो बहुत हुई, पर उनकी स्थापनाएं अटल ही रहीं, कोई उनके विरुद्ध प्रमाण न ला सका। उन्होंने विद्वानों को शास्त्र–परीक्षण की एक नई दिशा प्रदान की।

सन् 1921 में '**उपासनातत्त्व**', 1922 में '**विवाह समुद्देश्य**', 1925 में '**विवाहक्षेत्र प्रकाश**' व '**रत्नकरण्डश्रावकाचार की प्रस्तावना**', 1935 में '**स्वामी समन्तभद्र**', 1942 में '**रत्नकरण्डश्रावकाचार का अनुवाद**', 1943 में '**वृहत्स्वयंभूस्तोत्र का अनुवाद**' और 1944 में '**सत्साधु–स्मरण–मंगलपाठ**' का प्रकाशन हुआ। अप्रैल 1955 में समन्तभद्राचार्य के '**रत्नकरण्डश्रावकाचार**' की विस्तृत व्याख्या '**समीचीन धर्मशास्त्र**' नाम से प्रकाशित हुई।

मुख्तार साहब के 32 निबन्धों का लगभग 750 पृष्ठीय एक संग्रह सन् 1956 में '**जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश**', प्रथम खण्ड, नाम से प्रकाशित हुआ था। तदुपरान्त 1963 में समाज सुधार, अंधविश्वासों एवं अज्ञानपूर्ण मान्यताओं–प्रथाओं आदि की तीव्र आलोचना, राष्ट्रीयतापोषण एवं राजनीतिक दशा, हिन्दी प्रचार, जैन नीति, जैन उपासनाा का स्वरूप, जैनी भक्ति का रहस्य आदि अनेक उपयोगी विषयों को समाविष्ट किये 41 मौलिक निबन्धों का संग्रह '**युगवीर–निबन्धावली–प्रथम खण्ड**' के रूप में प्रकाशित हुआ। उसी श्रृंखला में सन् 1967 में 872 पृष्ठीय एक अन्य संकलन '**युगवीर–निबन्धावली**'–**द्वितीय खण्ड**' नाम से प्रकाशित हुआ जिसमें मुख्तार साहब के उत्तरात्मक, समालोचनात्मक, कृति परिचयात्मक, विनोद–शिक्षात्मक एवं प्रकीर्णक – इन 5 विभागों में

वर्गीकृत 65 निबन्ध–लेखादि समाहित हैं। निबन्धावली के इस खण्ड के पूर्व 1965 ई. में उनकी कृति **'सन्मति सूत्र और सिद्धसेन'** का डॉ. ए.एन. उपाध्ये कृत अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हो चुका था। उक्त कृति और निबन्धावली के द्वितीय खण्ड पर प्राक्कथन लिखने का सौभाग्य डॉ. ज्योति प्रसाद जैन को प्राप्त रहा।

भगवान महावीर के परम उपासक और स्वामी समन्तभद्र के अनन्य भक्त जुगलकिशोर जी ने न केवल 'वीर सेवा मंदिर' और 'समन्तभद्राश्रम' जैसी संस्थाओं की अपने एकाकी बलबूते पर स्थापना की, अपितु अनेक शास्त्र–भण्डारों से खोज–खोजकर कितने ही प्राचीन ग्रन्थों का उनकी जीर्ण–शीर्ण पाण्डुलिपियों पर से उद्धार किया। उन्होंने उनका संशोधन भी किया तथा उनमें से कई को सुसम्पादित कर अपनी संस्था से प्रकाशित कराया। **'पुरातन जैन–वाक्य सूची'**, **'जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह'**, **और** **'जैन लक्षणावली'** जैसे अतीव उपयोगी संदर्भ ग्रन्थ उनके 'वीर सेवा मंदिर' की देन हैं।

'युक्त्यनुशासन', **'देवागम'**, **'अध्यात्म रहस्य'**, **'तत्वानुशासन'**, **'समाधितन्त्र'** आदि अनेक ग्रन्थों के अद्वितीय अनुवाद–भाष्य उन्होंने रचे और कई ग्रन्थों की विद्वत्तापूर्ण विस्तृत प्रस्तावनाएं लिखीं। मूल लेखक के भावों को हृदयंगम कर उसे सरल भाषा में प्रकट करना मुख्तार साहब के अनुवादों की विशेषता रही। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में भी वह **'हेमचन्द्रीय योगशास्त्र'** की एक विरल दिगम्बर टीका, **'अमितगति के योगदासार प्राभृत के स्वोपज्ञ भाष्य'** तथा **'कल्याणकल्पद्रुम स्तोत्र'** पर मनोयोगपूर्वक कार्य करते रहे।

राष्ट्रीय भावना

सरलता–सादगी के पर्याय, सन् 1920 से बराबर खादी पहनने वाले और महात्मा गांधी की पहली गिरफ्तारी पर यह व्रत लेने वाले कि जब तक वह छूट न जायें बिना चर्खा काते भोजन नहीं करेंगे, जुगलकिशोर जी में राष्ट्रीय भावना पूर्णतः समायी थी जो उनकी अनेक रचनाओं में भी मुखरित हुई। उन्होंने शहर के कोलाहल से दूर अपनी साहित्य–साधना हेतु जन्मभूमि सरसावा में 'वीर सेवा मंदिर' बनाया था। वह मंदिर तो नहीं, एक गुरुकुल सरीखा आश्रम था जिसके अधिष्ठाता वह स्वयं थे और उनके सान्निध्य में वहां डॉ. दरबारीलाल कोठिया और पं. परमानन्द शास्त्री प्रभृति

कई विद्वान साहित्य–साधनारत रहते थे। बाद में उनके प्रशंसक कतिपय उदार धनिकों के आग्रह और सहयोग से इस महत्वपूर्ण शोध संस्थान को राष्ट्रीय गरिमा प्रदान करने हेतु दिल्ली स्थानान्तरित किया गया। 17 जुलाई, 1954 को साहू शांति प्रसाद ने नये भवन का शिलान्यास किया था।

स्वाभिमानी, स्वालम्बी, स्वतन्त्रचेता मुख्तार साहब मानवीय दुर्बलताओं से युक्त होते हुए भी इतने निस्पृही थे कि उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति साहित्य–साधना को अर्पित कर दी और मरते समय अपनी शेष निजी सम्पत्ति का एक ट्रस्ट बना गये जिससे कई पुस्तकें प्रकाशित हुई। 5 दिसम्बर, 1943, को सरसावा के इस सन्त का सहारनपुर में भव्य सार्वजनिक सम्मान हुआ था। उस अभिनन्दन का कितने नपे–तुले शब्दों में, कितनी विनम्रता और शालीनता से उन्होंने अपना आभार व्यक्त किया था वह **'अनेकान्त'** (जनवरी 1944) में पृष्ठ 165–167 पर दृष्टव्य है। सन् 1923 में दिल्ली में अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद की स्थापना का जिन व्यक्तियों को श्रेय है उनमें एक पं. जुगलकिशोर जी भी थे। सन् 1944 की श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को राजगृह के विपुलाचल पर भगवान महावीर की देशना के 2500 वर्ष पूर्ण होने पर सोत्साह 'वीर शासन जयन्ती' आयोजित कराने वाले और तदनन्तर यह देशना तिथि प्रतिवर्ष **वीर शासन जयन्ती** के रूप में देश में मनायी जाये इस आन्दोलन के प्रवर्तक भी वही रहे।

उनके प्रेरणास्पद व्यक्तित्व–कृतित्व का स्मरण कर हमारा मस्तक उनके पादारविन्द में श्रद्धा से नत है।

✧✧✧

जैन धर्म की प्राचीनता

— डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

धर्मतत्त्व शाश्वत है, उसका न कोई आदि है और न अन्त। किन्तु अमुक–अमुक नामांकित धर्म परम्पराओं में आपेक्षिक प्राचीनता–अर्वाचीनता का विकल्प ऐतिहासिक दृष्टि से होता ही है। यह भी आवश्यक नहीं है कि जो धार्मिक सम्प्रदाय जितना अधिक प्राचीन होगा वह उतना ही श्रेष्ठ और सर्व–ग्राह्य होगा। तथापि, जो धर्म परम्परा श्रेष्ठ और सर्व–ग्राह्य होने के साथ–साथ प्राचीन भी सिद्ध हो तो वह उसकी एक अतिरिक्त विशेषता ही है। जैन परम्परा की प्राचीनता ईसा से लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व तक तो आधुनिक इतिहासकारों द्वारा प्रायः स्वीकृत ही हो चुकी है। तथाकथित हिन्दूधर्म की शैव, शाक्त, वैष्णवादि परम्पराओं का तथा बौद्ध धर्म का उदय 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के पश्चाद्वर्ती काल की ही घटनायें हैं। भ0 पार्श्व के समय में वैदिक धर्म अपने जीवन के संध्याकाल में था और श्रमण तीर्थंकरों के विचारों के प्रभाव से उसमें औपनिषदिक अध्यात्मवाद का उस समय विशेष प्राबल्य हो चला था।

भ0 पार्श्व के पूर्ववर्ती 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ अपरनाम अरिष्टनेमि महाभारत–कालीन नारायण कृष्ण और हस्तिनापुर के कुरूवंशी कौरवों एवं पांडवों के समकालीन थे। वह स्वयं कृष्ण के ताऊज़ात भाई थे और यदुवंशियों (हरिवंशियों) की प्रारम्भिक राजधानी शौरिपुर में महाराज समुद्रविजय की रानी शिवादेवी की कुक्षि से उनका जन्म हुआ था। शौरिपुर का त्याग करके यादवों ने पश्चिम समुद्रतटवर्ती द्वारका को राजधानी बनाया। वहीं निकटवर्ती जूनागढ़ की राजकुमारी राजुलदेवी के साथ नेमिनाथ के विवाह के अवसर पर मूक पशुओं की दशा से द्रवित होकर नेमिकुमार ने भोग–ऐश्वर्य का त्याग करके गिरिनगर (उर्ज्जयंत पर्वत) के शिखर पर तपस्या की और वहां से निर्वाण लाभ किया। **महाभारत** में वर्णित मूल घटनाओं तथा उसके कृष्ण आदि पात्रों को अब ऐतिहासिक स्वीकार किया जाने लगा है और इस प्रकार 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ की ऐतिहासिकता भी स्वतः सिद्ध हो जाती है। ईसा पूर्व 10वीं–9वीं शती के गिरनार से प्राप्त एक अभिलेख में खिल्दिया (मध्य एशिया) के तत्कालीन शासक नेबुचेदनजर द्वारा 'गिरनार के स्वामि नेमिनाथ' की पूजार्थ दान देने का उल्लेख है।

यह तथ्य भी तीर्थंकर नेमिनाथ की ऐतिहासिकता का समर्थक है। **यजुर्वेद** आदि में भी अरिष्टनेमि का उल्लेख है।

रामायण में वर्णित अयोध्यापति रघुवंशी महाराज रामचन्द्र के समकालीन 20वें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ थे। स्वयं राम भी तपश्चरण करके अर्हत्केवलि और मोक्षगामी सिद्ध परमात्मा हुए। जैन **पद्मपुराण** में उन्हीं के चरित्र का वर्णन है।

हिन्दू पुराणों में काकन्दीनगरी में उत्पन्न 9वें तीर्थंकर पुष्पदन्त का काकुत्स्थ नाम से वर्णन है और प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को तो विष्णु का अवतार ही प्रतिपादित किया गया है और उनके ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम पर ही इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा, यह स्पष्ट कथन किया गया है। भ0 ऋषभदेव का उल्लेख ब्राह्मण परम्परा के सर्वप्राचीन ग्रन्थ **ऋग्वेद** में भी है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि शैव परम्परा के महादेव, शंकर और शिव तथा प्राचीन योगि परम्परा के प्रवर्तक आदिदेव भी यह आदि तीर्थंकर ऋषभदेव ही हैं। सिन्धु घाटी की प्रागऐतिहासिक एवं प्राग्–आर्य सभ्यता के जो अत्यन्त प्राचीन अवशेष मोहन्जोदड़ो, हड़प्पा आदि स्थानों में प्रकाश में आये हैं उनसे भी यह प्रमाणित होता है कि उस काल और उस प्रदेश में भी वृषभ–लांछन दिगम्बर योगिराज आदि–तीर्थंकर ऋषभदेव की पूजा प्रचलित थी।

वस्तुतः भगवान ऋषभदेव का जन्म जिस सुदूर अतीत काल में हुआ था उस समय भोगभूमि की व्यवस्था थी। मनुष्य का जीवन प्रायः पूर्णतया प्रकृत्याश्रित था, कर्म करना उसने अभी सीखा ही नहीं था। मनुष्य की अधुनाज्ञात प्राचीनतम प्रागऐतिहासिक सभ्यताओं का भी संभवतया तब तक उदय नहीं हुआ था। 15वें कुलकर एवं मनु और प्रथम तीर्थंकर आदिपुरुष भगवान ऋषभदेव ने ही इस कल्पकाल में सर्वप्रथम मानवी सभ्यता का ॐ नमः किया, मनुष्यों को असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य आदि कर्म सिखाये, अक्षर–ज्ञान एवं अंक–ज्ञान दिया, ग्राम नगर आदि बसाये, देश विभाजन और राज्य व्यवस्था की, तथा अन्त में मोक्षमार्ग का उपदेश दिया और स्वयं उक्त मार्ग पर चलकर मोक्षगामी हुए। उन्हीं की परम्परा में समय–समय पर 23 अन्य तीर्थंकर हुए जिनमें वर्द्धमान महावीर (छठी शती ईसा पूर्व) अन्तिम थे। भ0 महावीर ने ही जैन–धर्म को उसका वर्तमान रूप प्रदान किया। गत अढ़ाई सहस्र वर्ष से उन्हीं का धर्म–शासन

प्रवर्तित है। किन्तु महावीर जैन धर्म के संस्थापक नहीं है। उन्होंने किसी नवीन धर्म का प्रवर्तन नहीं किया, वरन् वृषभादि पार्श्वनाथ पर्यन्त पूर्ववर्ती 23 तीर्थंकरों द्वारा उपदेशित धर्म का ही जनभाषा में समयानुकूल उपदेश दिया और प्रचार किया।

इस प्रकार जैन परम्परा की प्राचीनता मानवी सभ्यता के आद्य युग तक पहुंचती है। अहिंसावादी, निवृत्तिप्रधान, आत्म–धर्मी अर्हतों की यह **आर्हत परम्परा** विशुद्ध भारतीय एवं प्राग्वैदिक तथा प्रागार्य है। जब वैदिक धर्म का उदय हुआ तो इस आर्हत परम्परा से उसका भिन्नत्व सूचित करने के लिये उक्त वैदिक परम्परा को **वार्हत परम्परा** कहा गया। वैदिक परम्परा में ब्राह्मणों का प्राबल्य हुआ तो वह **ब्राह्मण परम्परा** कहलाने लगी। आर्हत परम्परा के पुरस्कर्त्ता मुख्यतयः क्षत्रिय थे जो श्रमपूर्वक आत्म शोधन पर तथा व्रत–चारित्ररूप संयम पर बल देते थे। अतएव वैदिक साहित्य में उन्हें **व्रात्य** कहा गया और उत्तर वैदिक साहित्य में **श्रमण**। श्रमण–ब्राह्मण संघर्ष चिरकाल तक चला, भारतीय संस्कृति की इन दोनों धाराओं में परस्पर क्रिया–प्रतिक्रिया और आदान–प्रदान भी होते रहे। कालान्तर में श्रमण परम्परा में आजीवक, बौद्ध आदि अन्य कई सम्प्रदाय भी उत्पन्न हुए। ब्राह्मण वैदिक परम्परा ने भी शनैः शनैः भागवत् धर्म तथा पौराणिक या सनातन हिन्दू धर्म का रूप लिया। उक्त आर्हत, व्रात्य अथवा श्रमण परम्परा की मूलधारा का प्रतिनिधित्व निर्ग्रन्थ अथवा जैन धर्म करता रहा और आज भी कर रहा है।

(कीर्तिशेष डॉ. साहब ने **रुहेलखंड – कुंमायुं और जैन धर्म** में 1970 ई. में जैन धर्म की प्राचीनता का उपरोक्त परिचयात्मक विवेचन किया था। वर्तमान परिस्थितियों में जनसामान्य को इसकी जानकारी होना अभीष्ट है। भारतीयत्व को गंगा–गीता में संकुचित करना एक विशिष्ट धर्म–उन्माद का लक्षण है जो भारतीय संस्कृति की मौलिक विचारधाराओं की उपेक्षा के लिए भी प्रेरक हो सकता है। जैन–धर्म–संस्कृति भारतीय संस्कृति की मौलिक एवं प्राचीनतम विचारधारा का प्रतिनिधित्व करती है। यह भारतीय संस्कृति का अभिन्न अविभाज्य अंग है जिसके बिना समग्र समन्वित भारतीय संस्कृति की अवधारणा सम्भव नहीं है। डॉ. साहब के उपरोक्त विचार इस तथ्य को समझने में विशेष रूप से सहायक होंगे।

– डॉ. शशि कान्त)

✧✧✧

आधुनिक युग के आद्य शिक्षाविद्

राजा शिव प्रसाद (जैन) 'सितारे हिन्द'

— श्री अजित प्रसाद जैन

राजा शिवप्रसाद जी का जन्म वाराणसी के एक मध्यम वर्ग के अग्रवाल जैन परिवार में सन् 1823 में हुआ था। इनके पिता श्री गोपी चन्द का स्वर्गवास जब वे 11–12 वर्ष के ही थे, हो गया था। यद्यपि परिस्थितियोंवश वे बहुत ही मामूली स्कूली शिक्षा प्राप्त कर पाये, किन्तु पढ़ने के वे बड़े शौकीन थे तथा उन्होंने अपने अध्यवसाय व प्रतिभा के बल पर विविध विषयों में विपुल ज्ञानार्जन कर लिया और हिन्दी, फ़ारसी व अंग्रेज़ी भाषाओं में महारत हासिल कर ली।

उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर 17 वर्ष की छोटी उम्र में ही भरतपुर के महाराजा ने इन्हें अपना वकील नियुक्त कर दिया। किन्तु भरतपुर दरबार से इनकी नहीं पटी और कुछ समय बाद नौकरी छोड़ कर वे बनारस वापस आ गये।

सन् 1844–45 में शिवप्रसाद जी ने **'बनारस अखबार'** का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस अखबार का प्रारम्भ लीथो मुद्रण में हुआ था तथा कदाचित् यह देवनागरी लिपि में हिन्दी या हिन्दुस्तानी का पहला अखबार था।

अंग्रेज–सिख युद्ध के दौरान उन्होंने कम्पनी सरकार की नौकरी कर ली। इनकी सेवायें बहुत सराही गयीं और सन् 1847 में उन्हें प्रोन्नत करके शिमला एजेन्सी में 'मीर मुंशी' बना दिया गया। इस पद पर कार्य करते हुए शिवप्रसाद जी ने पहाड़ी इलाके के निवासियों के लिए एक विशेष प्रकार की शिक्षा पद्धति का निर्माण किया जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई और उनकी सेवायें बहुत महत्वपूर्ण और उपयोगी मानी गयीं।

'उत्तर–पश्चिम प्रान्त' के गवर्नर ने शिवप्रसाद जी की शिक्षा सम्बन्धी सेवाओं से प्रभावित होकर उन्हें सन् 1856 में बनारस मंडल का संयुक्त स्कूल इन्स्पैक्टर नियुक्त कर दिया। इस पद पर शिवप्रसाद जी ने इतनी लगन और योग्यता से कार्य किया कि शिक्षा विभाग के प्रान्तीय निदेशक (डायरैक्टर आफ़ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन) एच.एस.रीड ने दि. 7 नवम्बर, 1865, को अपने संस्मरण में लिखा था —

"बाबू शिवप्रसाद की शिक्षा विभाग संबंधी सेवायें उल्लेखनीय एवं विशिष्ट (रिमार्केबल एण्ड एमीनेन्ट) हैं। इन्होंने देशी शिक्षा की उन्नति और देशी भाषा के निर्माण में अपनी सम्पूर्ण योग्यता का उपयोग किया है। इनका साहित्यिक अध्ययन अद्भुत रहा है। इन्होंने अपने पद से अपने काम को कभी नहीं नापा। इन्होंने सरकारी समय के अलावा अपने आराम का समय भी राज्य की सेवा में लगाया है।"

अपने अध्यवसाय, परिश्रम व प्रतिभा के बल पर उन्नति करते हुए वे अन्ततः आगरा मण्डल के इन्स्पैक्टर आफ़ स्कूल्स के पद से तीस वर्ष की 'उल्लेखनीय एवं विशिष्ट सेवा' करके रिटायर हुए। इस उच्च पद पर कार्य करने वाले कदाचित् वे पहले भारतीय थे।

शिवप्रसाद जी को सन् 1870 में 'सी.एस.आई.' ('सितारे हिन्द') तथा 1874 में 'राजा' की उपाधि से सम्मानित किया गया जो बाद में पैतृक सम्पत्ति घोषित की गयी। सन् 1882–83 में वे गवर्नर–जनरल की धारा सभा के सदस्य बनाये गये तथा 1887 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के फ़ैलो बनाये गये।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सन् 1845 से 1870 का समय **'शिवप्रसाद युग'** के नाम से विख्यात है। उन दिनों न केवल बनारस में वरन् सम्पूर्ण हिन्दी क्षेत्र में शिवप्रसाद जी की तूती बोलती थी। उनका **'बनारस अखबार'** सन् 1844–45 से छपना प्रारम्भ हुआ। यद्यपि इस अखबार की भाषा उर्दू के अधिक निकट थी तथापि लिपि देवनागरी ही थी। दरअसल राजा साहब हिन्दी के उस लोक भाषा रूप के पक्षधर थे जो न तो फ़ारसी भरी उर्दू हो और न संस्कृत के तत्सम शब्दों से भरी पंडिताउ हिन्दी हो। देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली इस लोक भाषा के निर्माण व प्रचार में ही राजा साहब ने अपना सारा जीवन लगा दिया। हिन्दी भाषा के इसी रूप में उन्होंने 18 पुस्तकें भी लिखीं जिनमें से कुछ इतिहास विषयक हैं, कुछ अंग्रेज़ी से हिन्दी में अनुवाद हैं तथा कुछ पाठ्य पुस्तकें एवं शिक्षा संबंधी हैं। अनुवाद कार्य एवं स्वतन्त्र लेखन दोनों में उनकी इसी भाषा नीति का दृढ़तापूर्वक पोषण है।

बाद में हिन्दी के इसी रूप को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने 'हिन्दुस्तानी' नाम दिया तथा राष्ट्र भाषा के लिए उसकी ज़ोरदार हिमायत की। यह दूसरी बात है कि हिन्दी भाषा का यह रूप हिन्दी के साहित्यकारों को रुचिकर नहीं लगा तथा अन्ततः यह लोक प्रिय नहीं हुआ।

शिवप्रसाद जी की पहली पुस्तक **'सिक्खों का उदय और अस्त'** सन् 1851 में छपी। **'इतिहास तिमिर नाशक'** उनकी दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक है जिसमें उन्होंने अंग्रेज इतिहासकारों की भूलों व भ्रान्तियों का दृढ़तापूर्वक दिग्दर्शन कराया है। **'हिन्दी सेलक्शन्स'** नाम से सन् 1867 में प्रकाशित इनके द्वारा सम्पादित पाठ्य पुस्तक को उस युग की सर्वश्रेष्ठ सम्पादित एवं मुद्रित पुस्तक माना गया था। शिवप्रसाद जी ने यह पुस्तक सरकारी आज्ञा से जूनियर सिविल सर्वेन्ट्स एण्ड मिलिटरी आफिसर्स की भाषा ज्ञान परीक्षा के लिए तैयार की थी। इसके प्रत्येक गद्य या पद्य खण्ड के प्रारम्भ में शिवप्रसाद जी ने अंग्रेजी में विद्वत्तापूर्ण परिचयात्मक टिप्पणी भी दी थी। शिवप्रसाद जी ने उर्दू में भी जो उस युग में अदालतों तथा सरकारी दफ्तरों की भाषा थी, 14 पुस्तकें लिखीं।

इस प्रकार राजा साहब अपने युग के पायनियर पत्रकार, मौलिक लेखक, अनुवादक, पाठ्य पुस्तकों के रचयिता, शिक्षाविद् तथा भाषाविद् के रूप में हिन्दी जगत के जगमगाते नक्षत्र थे तथा सही अर्थो में 'सितारे हिन्द' थे। 23 मई सन् 1895 को इस अद्भुत प्रतिभा के धनी महापुरुष का देहावसान बनारस में हुआ।

(स्मृतिशेष श्री अजित प्रसाद जैन ने **शोधादर्श 13** – जनवरी 1991 – में यह परिचय प्रकाशित किया था। 2014 में शिव प्रसाद जी की 191वीं जन्म–जयंती और 119वीं पुण्यतिथि है। वह लखनऊ के मुंशी नवल किशोर भार्गव के साथियों में थे और नवल किशोर जी के प्रेस से उनकी कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित हुयी थीं। शिवप्रसाद जी ने अपनी एक पुस्तक की प्रस्तावना में यह संस्मरण भी दिया है कि उनके पूर्वज जो बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला के समय में मुर्शीदाबाद से बनारस का सफर जब कर रहे थे तो उनके परिवार की महिलाओं ने अपने बिस्तर के नीचे बारूद बिछा रखी थी ताकि यदि नवाब के मुसलमान सिपाही उन पर हमला करें तो वे बारूद में आग लगा कर आत्मदाह कर लें और अपनी आबरू बचा लें। यह दृष्टान्त इस बात का द्योतक है कि मुसलमानी शासन में हिन्दू महिलाओं की आबरू सुरक्षित नहीं थी और प्रकारान्तर से अपनी सुरक्षा के लिए हिन्दू अंग्रेजों से संरक्षण प्राप्त करने के लिए समुत्सक हुए। इतिहास का यह एक कटु सत्य है कि तत्कालीन मुसलमानी बर्बरता से छुटकारा पाने के लिए प्रबुद्ध या जागरूक हिन्दू जन अंग्रेजों की ओर आकर्षित हुए और उन्हें अपना सहयोग दिया। इस सन्दर्भ में भी शिव प्रसाद जी के कृतित्व का आकलन किया जाना अभीष्ट है। – डॉ. शशि कान्त)

जैन स्थापत्य

– डॉ. शशि कान्त

कला के दो स्पष्ट क्षेत्र हैं जिन्हें हम लौकिक और धार्मिक कह सकते हैं। लौकिक क्षेत्र के अन्तर्गत कला का वह रूप मुखर होता है जो मनुष्य को अपने जीवन की सुख–सुविधा के लिए आवश्यक है। धार्मिक क्षेत्र में कला का वह रूप प्रत्यक्ष होता हे जो मनुष्य को अभौतिक आत्मिक शांति प्रदान करने के लिए अभीष्ट होता है।

स्थापत्य कला का जो रूप **लौकिक** दृष्टि से भारत में दीख पड़ता है उसके उदाहरण प्रतिरक्षा के लिए दुर्ग निर्माण एवं नगर परिकरों के निर्माण, आवास के लिए नगर नियोजन, गृह एवं प्रासाद के निर्माण, और आमोद–प्रमोद के लिए नाट्यशालाओं या प्रेक्षागृहों के निर्माण के रूप में प्राप्त होते हैं। स्थापत्य कला के लौकिक क्षेत्र के उदाहरण हमें सिन्धु घाटी की प्रागैतिहासिक सभ्यता के पुरातात्विक अवशेषों से मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं। उनसे यह विदित होता है कि आज से प्रायः पांच हजार वर्ष पूर्व के भारतीयों को नगर नियोजन के सामान्य सिद्धांतों का पर्याप्त ज्ञान था और वे आवासीय गृहों के बनाने में कुशल थे। दुर्ग निर्माण के प्राचीनतम उदाहरणों के रूप में हमें राजगृह की दुर्ग प्राचीर और कौशाम्बी के दुर्ग के अवशेष प्राप्त हुए हैं जिनका समय प्रायः तीन हजार वर्ष पूर्व तक अनुमान किया जाता है।

धार्मिक क्षेत्र में स्थापत्य के उतने पुराने अवशेष अभी प्रकाश में नहीं आये हैं। ऐसा अनुमान किया गया है कि सम्भवतः कुछ सभागृह के प्रकार के बने हुए भवन मोहनजोदड़ो में धार्मिक कृत्यों के लिए उपयोग में लाये जाते होंगे। परन्तु इस अनुमान के लिए सम्प्रति कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। अतः धार्मिक क्षेत्र में स्थापत्य की परम्परा के लिए हमें प्रायः पिछले ढाई हजार वर्ष के ऐतिहासिक काल का ही आश्रय लेना अभीष्ट है।

जो अवशेष प्राप्त हुए हैं उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि स्थापत्य का उपयोग धार्मिक क्षेत्र में प्रथमतः जैनों और बौद्धों ने ईसा पूर्व की 5वीं–4थी शताब्दी में स्तूप निर्माण के माध्यम से किया। **सर्वप्राचीन स्तूप** अब तक के ज्ञात पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर मथुरा में कंकाली टीले वाला जैन स्तूप है। स्तूप के जो अवशेष प्राप्त हुए हैं वह प्रायः ई0 सन् एक शताब्दी पहले से और तीन–चार शताब्दी बाद तक के हैं। तथापि वह स्तूप

प्राचीनतर था इसका प्रमाण खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख में मिलता है। उक्त शिलालेख से यह विदित होता है कि ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में मथुरा में एक स्तूप विद्यमान था जिसकी बड़ी मान्यता थी। मथुरा से प्राप्त अभिलेखों में इस स्तूप को **'देव निर्मित स्तूप'** की संज्ञा दिया जाना यह सूचित करता है कि यह स्तूप ईस्वी सन् के लगभग इतना प्राचीन हो चुका था कि लोग उसके वास्तविक निर्माण काल को भूल चुके थे और उसकी प्राचीनता को निर्दिष्ट करने के लिए उसे "देवताओं द्वारा बनाया हुआ" बताने लगे थे। इस स्तूप की एक प्रतिकृति मथुरा से प्राप्त एक आयागपट्ट पर भी अंकित है और उससे यह विदित होता है कि स्तूप एक ऊंचे चबूतरे पर स्थित था जिस तक जाने के लिए सीढ़ियां बनी हुई थीं। सीढ़ियां चढ़कर प्रवेश–द्वार दिखलाया गया है जिसमें दो स्तम्भ हैं और ऊपर तीन आड़ी पट्टिकाएं हैं। प्रवेश–द्वार के दोनों ओर एक वेदिका है जो सम्भवतः प्रदक्षिणा–पथ को आवृत्त करती है। स्तूप की आकृति बौद्ध स्तूप की आकृति से भिन्न है। शीर्ष भाग गोलाकर है और सम्पूर्ण स्तूप लम्बोतरे आकार में निर्मित है। वेदिका के दोनों कोनों पर एक–एक स्तम्भ है जिसके शीर्ष पर धर्म–चक्र प्रदर्शित किया गया है। स्तूप के मुख्य भाग का यह चित्रांकन समकालीन प्रतीत होता है। इस स्तूप की प्राथमिक स्थिति क्या रही होगी, यह कहना कठिन है। सम्भावना यह है कि स्तूप के आकार में मूलरूप से परिवर्तन नहीं हुआ होगा, उस पर अलंकरण और उसके चारों ओर वेदिका एवं अलंकृत स्तम्भों आदि का निर्माण बाद को जोड़े गए हो सकते हैं। इस सम्भावना का आधार यह है कि इस स्तूप की मान्यता अत्यंत प्राचीन स्तूप के रूप में उस समय भी थी।

स्तूप पूजा का प्रचलन जैनों में था, यह निर्विवाद है। परन्तु उनका निर्माण किस आधार पर किया गया था, यह कहना कठिन है। अवशेष पूजा का विधान जैन धर्म में नहीं है। अतः स्तूप का उद्देश्य बौद्धों की भांति तीर्थंकर के अवशेषों को सुरक्षित रखने और उनकी पूजा करने से नहीं हो सकता। यह अनुमान किया गया है कि स्तूप का निर्माण जैनों में तीर्थंकर के समवसरण के प्रतीक के रूप में किया गया प्रतीत होता है।

खारवेल के **हाथीगुम्फा शिलालेख** से यह ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व तीसरी शती में जैनों में चार प्रकार के निर्माण पूजा के लिए किये जाते थे, यथा निशिद्या, नसियां, स्तूप और सन्निवेश। एक निशिद्या का

निर्माण खारवेल ने स्वयं भी कराया था। नसियां के साथ साधुओं के आवास हेतु भी कक्ष बने होते थे और इसी प्रकार की एक नसियां खारवेल की रानी सिन्धुला ने भी बनवाई थी। स्तूप की पूजा खारवेल ने मथुरा में की थी। सन्निवेश में जिन या तीर्थंकर की प्रतिमा प्रतिष्ठित होती थी और ऐसे ही एक सन्निवेश में खारवेल द्वारा पूजा किए जाने का उल्लेख है। नसियां या चैत्य का प्रचार पूजा–स्थल के रूप में बहुत प्राचीन काल से था, जैसा कि जैन और बौद्ध साहित्य से विदित होता है। महावीर और बुद्ध अपने विहार काल में प्रायः चैत्यों में ठहरते थे जो प्रायः नगर के बाहर होते थे। इन चैत्यों में श्रमण साधुओं के ठहरने की व्यवस्था रहती थी ऐसा अनुमान सहज ही किया जा सकता है। जब पहले–पहल मुनियों के आवास की व्यवस्था का प्रश्न सोचा गया होगा तो इन चैत्यों ने ही उन आवासों के लिए एक शैली का उदाहरण प्रस्तुत किया होगा। यही कारण है कि प्राचीनतम अभिलेख में जैन साधुओं के लिए जो आवास व्यवस्था की गई वह चैत्य शैली की नसियां के रूप में हुई।

जिस सन्निवेश का उल्लेख खारवेल के शिलालेख में किया गया है उसके स्वरूप के विषय में कोई अनुमान करना कठिन है। उतने प्राचीन किसी जैन मन्दिर के अवशेष अभी प्रकाश में नहीं आये हैं। इस उल्लेख से यह संकेत मिलता है कि मन्दिर निर्माण जैनों में काफी पहले प्रचलित हो गया था।

जैन स्थापत्य के प्राचीनतम अवशेष उड़ीसा में खण्डगिरि और उदयगिरी पहाड़ियों पर चट्टान को काट कर बनाए गये निर्माण है। पुरातात्विक उत्खनन से यह भी प्रकाश में आया है कि एक अर्धवृत्ताकार आधार पर कोई निर्माण भी खारवेल ने हाथीगुम्फा के ऊपर कराया था जिसमें कदाचित् कोई पूजनीय वस्तु प्रतिष्ठित की गई थी। इस अवशेष से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कदाचित् प्रारंभिक मन्दिर उस आकार के रहे होंगे। उसी काल में साधुओं के आवास के लिए ऐसे भी कक्ष चट्टान में काट कर बनाए गय थे जो लेण कहलाते थे और जिनके साथ कोई मन्दिर, स्तूप या चैत्य संलग्न नहीं होता था।

जो **जैन मन्दिर अब उपलब्ध** हैं उनमें खजुराहो, राणकपुर, आबू, देवगढ़ और शत्रुंजय के मन्दिरों का उल्लेख किया जा सकता है। इन मन्दिरों में मन्दिर–निर्माण के विभिन्न रूप देखने को मिल जाते हैं। ये

मन्दिर प्रायः दूसरी शताब्दी ईस्वी से बनने प्रारम्भ हुए। खजुराहो में स्थित मन्दिरों में पार्श्वनाथ और आदिनाथ के मन्दिर उल्लेखनीय हैं। इनका शिखर विशेष प्रकार से दर्शनीय है, जिसमें श्रृंगो की श्रृंखला एक अनुपात में निर्मित की गई है।

राणकपुर का मन्दिर 1439 ईस्वी में निर्मित हुआ था। वह 198 फीट चौड़ा और 205 फीट लम्बा है। इस विशाल मन्दिर के बीचोबीच एक प्रतिमा–सर्वतोभद्रिका प्रतिष्ठित है और मन्दिर की चारों दिशाओं में एक–एक द्वार है। इसमें गुम्बदों और स्तम्भों का बाहुल्य है जो धूप–छांव की सी अनवरत छटा उपस्थित करता है।

आबू पर स्थित मन्दिरों में विमलवसही का निर्माण 1032 ईस्वी में हुआ था। इसमें संगमरमर पर पच्चीकारी का उत्कृष्ट उदाहरण देखने को मिलता हे। ऐसा प्रतीत होता है कि संगमरमर को ढाला गया है।

पालिताना के निकट शत्रुंजय की पहाड़ी पर पर्वत–शिखरों के ऊपर विभिन्न आकार और प्रकार के सैकड़ों मन्दिर बनाए गए हैं। ये मन्दिर मूलतः 11वीं–12वीं शताब्दी में बनाए गये थे परन्तु जीर्णोद्धार के फलस्वरूप उनका मूल रूप अब अक्षुण्ण नहीं रहा। इस संदर्भ में केवल यह उललेखनीय है कि जैनों ने पर्वतशिखरों पर मन्दिर बनाने की एक विशेष विधा को अपनाया, और इस विधा के अन्तर्गत मन्दिर–नगरों का निर्माण किया।

उत्तर प्रदेश के ललितपुर जिले में स्थित देवगढ़ में जैन स्थापत्य का अद्‌भुत भण्डार संचित है। जो निर्माण वहां हुए वे 8वीं शती ईस्वी से 19वीं शती ईस्वी तक के हैं। ये मन्दिर नागर शैली में निर्मित हैं। इन मन्दिरों का सर्वांगपूर्ण उदाहरण मन्दिर संख्या 12 में मिलता है। इस मन्दिर के निम्नलिखित अंग दृष्टिगोचर होते हैं – महामण्डप, गर्भगृह, प्रदक्षिणा अन्तराल और अर्धमण्डप। महामण्डप 36 स्तम्भों पर आधारित है। इसके मध्य में एक चतुष्कोण वेदी थी जो अब नहीं है। प्रदक्षिणा पथ चतुष्कोण है और उसके चारों ओर एक–एक द्वार है।

जैन स्थापत्य में एक विशिष्ट शैली **मानस्तम्भ** के निर्माण की भी रही है। ये स्तम्भ मन्दिरों के सामने प्रायः निर्मित किए जाते रहे हैं। स्तम्भ–दण्ड भूमि पर एक के ऊपर एक निर्मित तीन पीठिकाओं पर स्थित होता है। इस प्रकार के शीर्ष पर एक सर्वतोभद्रिका स्थापित होती है। देवगढ़ में इस प्रकार 19 मानस्तम्भ विद्यमान हैं।

जैनों ने अपने मन्दिरों के निर्माण के लिए देश के विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित नागर, वेसर, कलिंग और द्रविड आदि शैलियों को अपनाया है। जैन मन्दिर भारतवर्ष के सभी प्रदेशों में विद्यमान हैं। जैन मन्दिरों का निर्माण गत एक सहस्र वर्षो में प्रायः अनवरत रहा है। आज भी नित्य नवीन शैलियों में मन्दिरों का निर्माण हो रहा है। पुरातात्विक दृष्टि से भी जैन स्थापत्य के अवशेष प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं जिनसे गुफा स्थापत्य, स्तूप स्थापत्य एवं मन्दिर स्थापत्य के प्रकारों और विकास–क्रमों पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

✧✧✧

नमो वीतरागं

– श्री भरतेश कुमार जैन

कौन है वो जो चला जा रहा है,
सुनसान पथरीली राह पर मौन–प्रफुल्लित!
हाथों में कमंडल–पिच्छि लिए, चेहरे पर तेज, उन्नत ललाट,
आंखों में दया का सागर,
कौन है वो जो चला जा रहा है दिगम्बरत्व के वेश में!
कदमों में जिसके वेग है, नहीं जिसको कोई आवेश है
ठहरता है जो किसी आबादी को देख किसी जिनालय में,
देता है विश्राम कुछ पल इस काया को,
जो त्याग चुका है त्याग को भी, जो है वीतरागी, न है क्रोध न मोह,
है निर्लिप्त आत्म–मंथन में व्यस्त,
रुकता है कुछ क्षण, देख भीड़ को
देता है ज्ञान जो सत्य, अहिंसा और आत्म–साक्षात्कार का
देता है निमंत्रण मोक्ष–मार्ग में साथ चलने का
कौन है वो जो चला जा रहा है
सुनसान पथरीली राह पर मौन–प्रफुल्लित!

(पंजाब नेशनल बैंक से मैनेजर के पद से सेवा–निवृत्त होने के बाद भरतेश जी को अध्यात्म और भक्ति में रुचि जागृत हुई और उसी के परिणाम स्वरूप उन्होंने यह रचना की।) **2/2433/1, गिल कॉलोनी, दुर्गाबाड़ी लेन, सहारनपुर–247001**

✧✧✧

शोध सारांश

जैन मन्दिरों की स्थापत्य कला – विश्लेषणात्मक अध्ययन

– डॉ. (श्रीमती) निधि जौहरी

प्राचीन भारत में जैन धर्म के प्रचार–प्रसार में स्थापत्य कला का अभूतपूर्व योगदान रहा है। भारतीय ललित कला के इतिहास पर भी जैन कला–कृतियों का प्रभाव पड़ा। जैन धर्म में 24 तीर्थंकरों की परम्परा मिलती है। इनमें अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी के सन्दर्भ में यक्षायतनों का उल्लेख प्राप्त हुआ है। परवर्ती काल में आलय, मन्दिर, देवगृह, प्रासाद, देवायतन आदि शब्द पूजा स्थलों के लिए प्रयुक्त किये गये।

उत्तर भारत में जैन कला के जितने प्राचीन केन्द्र थे उनमें मथुरा का स्थान महत्वपूर्ण है। यहां मौर्यकाल से लेकर आगामी लगभग सोलह शताब्दियों से ऊपर के दीर्घकाल में जैन कला का विकास होता रहा। मथुरा में चित्तीदार लाल बलुए पत्थर की बनी हुई जैन कला–कृतियां अब मथुरा और उसके आस–पास के जिलों से प्राप्त हो चुकी हैं। इनमें तीर्थंकर प्रतिमाओं के अतिरिक्त चौकोर आयागपट्ट, वेदिका, स्तम्भ, सूची, तोरण तथा द्वार–स्तम्भ आदि हैं। मथुरा के जैन प्राचीन अवशेषों में आयागपट्ट (पूजा के शिलाखण्ड) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उन पर प्रायः बीच में तीर्थंकर मूर्ति तथा उसके चारों ओर विविध प्रकार के मनोहर अलंकरण मिलते है। स्वस्तिक, नन्द्यावर्त, धर्मचक्र, श्रीवत्स, भद्रासन, दर्पण, कलश और मीन युगल – इन अष्ट–मंगल द्रव्यों का आयागपट्टों पर सुन्दरता के साथ चित्रण किया गया है। एक आयागपट्ट पर आठ दिक्कुमारियां एक–दूसरे का हाथ पकड़े आकर्षक ढंग से मण्डल नृत्य में संलग्न दिखायी गयी हैं। एक दूसरे आयागपट्ट पर तोरणद्वार तथा वेदिका का अत्यंत सुन्दर अंकन हैं। वास्तव में ये आयागपट्ट प्राचीन जैन कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनमें से अधिकांश अभिलिखित हैं, और इन पर ब्राह्मी लिपि में लगभग ई. पू. एक सौ से लेकर ईस्वी प्रथम शती के मध्य तक के लेख हैं। मथुरा के अवशेषों में जैन स्तूप विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। साहित्यिक साक्ष्यों से इसके देव निर्मित होने का पता चलता है। तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ के काल में इसका निर्माण हुआ कहा जाता है तथा पार्श्वनाथ के काल में इस पर कंचुक चढ़ाया गया था। शुंग

एवं कुषाणकालीन अभिलेखों से स्पष्ट है कि मथुरा में प्राचीन जैन स्तूप विद्यमान था।

स्तूप के पश्चात् गुफाओं का निर्माण किया गया। बिहार की बराबर व नागार्जुन पहाड़ियों की गुफाओं को जैन परम्परा से सम्बद्ध किया गया है। पर्णशालाओं के समान इन गुफाओं को शैलगृहों के रूप में प्रयोग किया गया। पश्चिमी भारत, मध्य भारत तथा दक्षिण में पर्वतों को काट कर जैन देवालय बनाने की परम्परा दीर्घ काल तक मिलती है। विदिशा के समीप उदयगिरि की पहाड़ी में दो जैन गुफाएं है। संख्या एक की गुफा में गुप्तकालीन जैन मन्दिर के अवशेष उपलब्ध हैं। उदयगिरि की संख्या 20 वाली गुफा भी जैन मन्दिर है।

जैन साहित्य में प्रासाद के भेदों में श्रीविजय, महापद्म, नन्द्यावर्त, लक्ष्मीतिलक, नरदेव, कमलहंस व कुंजर श्रेष्ठ सूची में रखे गये है। एक अन्य सूची में केशरी सर्वतोभद्र, सुनन्दन, नंदिशाल, नंदीश, मन्दिर, श्रीवत्स, अमृतोद्भव, हेमवंत, हिमकूट, कैलाश, पृथ्वीजय, इंद्रनील, महानील, भूधर, रत्नकूट, वैडूर्य, पद्मराग, वज्रांग, मुकुटोज्वल, ऐरावत, राजहंस, करुण, वृषभ और मेरु के नाम मिलते हैं। कुछ अन्य साहित्यिक साक्ष्यों में जिन बावन प्रासादों का उल्लेख किया गया है, उनमें कमलभूषण, कामदायक, रत्नकोटि, क्षितिभूषण, पद्मराग, पुष्पदंत, सुपार्श्व, शीतल, ऋतुराज, श्रीशीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्मद, श्रीलिंग, कुमुद, कमलकन्द, महेन्द्र, मानसंतुष्टि, नाभिश्रृंग, सुमतिकीर्ति, पार्श्ववल्लभ और वीरविक्रम नामक प्रासाद 24 तीर्थंकरों के हैं। अमृतोद्भव, श्रीवल्लभ, श्रीचन्द्र, कीर्तिदायक, मनोहर, सुकुल, कुलनन्दन, रत्नसंजय, मुक्ति, सुरेन्द्र, धर्मचक्षु, कामदत्तक, हर्षण, श्रीशैल, अरिनाशन, मानवेन्द्र, पापनाशन, उपेन्द्र, राजेन्द्र, यदिभूषण, सुपष्य, पद्मव्रत, रूपवल्लभ, अष्टपद, तुष्टि, पुष्टि आदि अन्य प्रासाद हैं।

मूलतः मन्दिर के जगती (अधिष्ठान), मण्डप, मण्डोवर, शिखर, छत, गोटा, पक्खा, तोरण, वेदिका, स्तम्भ आदि भाग होते हैं। चतुर्विंशति जिनालय, सर्वतोभद्रिका, सहस्रकूट जिनालय, नन्दीश्वर द्वीप के साथ गंधकुटी – समवसरण मन्दिर के भावात्मक रूप को साकार करते हैं।

जैन मन्दिर उत्तर एवं दक्षिण भारत में मिले हैं। उत्तर भारत में उत्तर प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और

महाराष्ट्र से तथा दक्षिण भारत में आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, और तमिलनाडु से प्राचीन जैन मन्दिर के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

उत्तर प्रदेश में देवगढ़ में 31 जैन मन्दिर मिले हैं। मन्दिर संख्या 1 प्रमुख है। यहां दीर्घाकार मन्दिरों के अतिरिक्त लघु मन्दिर भी हैं।

गुजरात से प्राचीन गुफाओं के अतिरिक्त जैन मन्दिरों के साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त होते हैं। शत्रुंजय और गिरनार पर तीर्थस्थलियों का निर्माण किया गया। जालोर, कुम्भारिया व तारंगा में राजाओं ने जैन मन्दिर बनवाये। अण्हिलपाटण में मूल–वसतिका–प्रासाद (मूलनाथ जिनमन्दिर) मूलराज प्रथम ने बनवाया था। मेहसाणा, तकोडि, कर्णावती, सायवणवाड्पुर आदि में भी जैन उपासना केन्द्र निर्मित हुए।

राजस्थान में संचोर, कोर्त, ओसिया, मण्डोर, रोहिम्सकूप, रणथम्भोर, अजमेर, बिजौलिया, नाडोल, सेवाड़ी, नाडलई, झालोड़ी चन्द्रावती, अहार, हस्तिकुण्डी, बयाना, लोद्रवा, दियाणा, अर्थूणा आदि में जैन मन्दिर विद्यमान थे। बंगाल में सातवीं शती ईस्वी के बाद जैन धर्म की स्थिति स्पष्ट नहीं है। बिहार में राजगिर (वैभार, सोनभण्डार, मनियार मठ), मानभूम और बक्सर से जैन अवशेष मिले हैं। बोरभ, आरा, सिंहभूमि, वेणुसागर आदि में प्राचीन जैन मन्दिर हैं। उड़ीसा में खण्डगिरि–उदयगिरि की पहाड़ियों, और कटक आदि में जैन धार्मिक केन्द्र बनाए गये। मध्यप्रदेश में ग्यारसपुर, खजुराहो, दूबकुण्ड, बहुरीबन्द, बिल्हारी, ऊन, अहाड़, विदिशा, बड़ोह, पठारी, देवाल, गंधावल, आदि स्थानों में जैन मन्दिर मिले हैं।

मध्यकाल में जैन मन्दिरों का निर्माण व्यापक रूप से होने लगा। भारत के सभी भागों में विविध प्रतिमाओं से अलंकृत जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ। इस कार्य में विभिन्न राजवंशों के अतिरिक्त व्यापारी वर्ग तथा जनसाधारण ने भी प्रभूत योगदान किया। चन्देलों के समय में खजुराहो में निर्मित जैन मन्दिर प्रसिद्ध हैं। इन मन्दिरों के बहिर्भाग एक विशिष्ट शैली में उकेरे गये हैं। मन्दिरों के बाहरी भागों पर समानान्तर अलंकरण पट्टिकाएं उत्कीर्ण हैं। उनमें देवी–देवताओं तथा मानव और प्राकृतिक जगत का अत्यंत सजीवता के साथ आलेखन किया गया है। खजुराहो के जैन मंदिरों में पार्श्वनाथ मन्दिर अत्यधिक विशाल है। इस मंदिर की छत का कटाव विशेष कलात्मक है और खजुराहो के स्थापत्य विशेषज्ञों की दक्षता का परिचायक है। खजुराहो का दूसरा मुख्य जैन मन्दिर आदिनाथ

का है। इसका स्थापत्य पार्श्वनाथ मन्दिर के समान है। विदिशा जिले के ग्यारसपुर नामक स्थान में मालादेवी मन्दिर के बहिर्भाग की सज्जा तथा गर्भगृह की विशाल प्रतिमाएं कलात्मक अभिरुचि की द्योतक हैं।

महाराष्ट्र में राष्ट्रकूटों के शासनकाल में ऐलोरा का प्रख्यात मंदिर एक विशाल पर्वत को काट कर बनाया गया। इस मन्दिर का अलंकरण तथा मूर्तिविधान अत्यंत कलापूर्ण है। ऐलोरा में अन्य मन्दिरों का निर्माण भी किया गया। इन्द्रसभा नामक जैन प्रासाद विशेषरूप से उल्लेखनीय है। इसका निर्माण लगभग 800 ईस्वी में हुआ था। चट्टान को काटकर बनाए गये दरवाजे से इस प्रासाद में प्रवेश किया जाता है। प्रासाद का प्रांगण 50 फुट वर्गाकार है। प्रांगण के मध्य में इकहरे पत्थर का बना हुआ द्रविड़ शैली का मन्दिर है। पास में ऊंचा ध्वज–स्तम्भ है। जैन मन्दिर में ध्वज–स्तम्भ बनाने की परम्परा दीर्घकाल तक मिलती है। उत्तर तथा दक्षिण भारत के मंदिरों में इस प्रकार के ध्वज–स्तम्भ दर्शनीय हैं। कतिपय ध्वज–स्तम्भों को चांदी या सोने से मढ़ दिया जाता था। महाराष्ट्र में अन्य मन्दिर कुण्डल, अकोला, भद्रावती, रेशन्दीगिरि, महायक्षी आदि में मिले हैं।

दक्षिण भारत में आन्ध्र प्रदेश में अमरपुरम के ब्रह्म जिनालय के अतिरिक्त कडलाय बसदि, कोल्लिपाक, चिप्पगिरि, पुडूर, आदि के जिनालय मुख्य हैं।

कर्नाटक में पर्वतों को काटकर बनाए गये अनेक मन्दिर हैं। बादामी के चालुक्य राजवंश तथा मान्यखेट के राष्ट्रकूट राजवंश के शासनकाल में शिलाओं को काटकर मन्दिर निर्माण की परम्परा बहुत विकसित हुई। ईस्वी 550 और 800 के मध्य में कर्नाटक में बादामी, पट्टदकल तथा ऐहोल में अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ। इनमें से कई मन्दिर शिलाओं को काटकर बनाए गये। शेष समतल भूमि पर पत्थरों द्वारा बनाए गये। जैन स्थापत्य कला के विकास में कर्नाटक के इन मन्दिरों का विशेष महत्व है।

दक्षिण भारत का मन्दिर–वास्तु 'द्रविड़शैली' के नाम से प्रसिद्ध है। चालुक्यों के समय में कर्नाटक में निर्मित अनेक मन्दिरों में द्रविड़ स्थापत्य का रूप मिलता है। बादामी पर्वत को काटकर बनाया गया एक विशाल जैन मन्दिर उल्लेखनीय है। इस मन्दिर में विभिन्न अलंकरणों को तथा

जैन देवी–देवताओं की प्रतिमाओं को प्रभावपूर्ण ढंग से चित्रित किया गया है। कुछ मन्दिरों में नागर शैली वाले उच्च्य शिखर हैं। ऐहोल में एक मन्दिर में भारत की तीनों मन्दिर शैलियों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। तमिलनाडु में शैलोत्कीर्ण गुहा मन्दिर सातवीं शताब्दी से मिलते हैं।

जैन मन्दिर स्थापत्य एवं समकालीन परम्पराओं का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि जैन सुमेरु पर्वत एवं हिन्दू कैलाश पर्वत को मन्दिरों के शिखर की संरचना का प्रेरक माना गया था। प्राचीन काल की मुद्राओं में भी शिखर की आकृतियां बनायी गयीं। ये मुद्राएं विभिन्न मतावलम्बियों के सम्मिलित प्रयास थे। मौर्य एवं शुंग काल में बौद्ध मन्दिर अपेक्षाकृत अधिक बनाए गए। इस समय हिन्दू मन्दिर भी निर्मित हुए। इस समय मन्दिरों के साथ वाटिका का निर्माण भी होता था। इस काल में मन्दिरों का निर्माण एक ऊंचे अधिष्ठान पर निर्मित स्तम्भों पर आधारित छत बनाकर होता था। छत का गोलाकार रूप अण्डाकार भी परिवर्तित हुआ। शक–सातवाहन काल में मन्दिरों के स्तम्भ, ध्वज आदि पर देवों का विशेष चिन्ह अंकित किया गया। शैव मन्दिरों में त्रिशूल आदि का अंकन हुआ। गुप्तकाल के मन्दिरों में सौन्दर्य पर अधिक ध्यान दिया गया। शिखर का आकार प्रायः छोटा रखा गया। इसी समय नागर शैली का विशेष रूप से उत्थान हुआ। गुर्जर–प्रतिहारों द्वारा पूर्णभद्र व षोडषभद्र रूपों पर अधिक बल दिया गया। कल्चुरि शैली के मंदिरों में बहिर्भाग के अलंकरण को प्रधानता दी गयी। सप्तशाखा द्वारों का सूत्रपात किया गया। शिखर की ऊंचाई अत्यधिक होने लगी। सामान्यतः वैष्णव, शैव एवं जैन मन्दिरों का निर्माण समीप होने लगा। जैन मन्दिरों में तत्कालीन तंत्र–मंत्र का भी प्रभाव पड़ने लगा। अंकन में अनेक चिन्हों का प्रयोग किया गया। कच्छपघात शैली में अलंकरण पर विशेष ध्यान दिया गया। चाहमान मंदिरों में पंचरथ शिखर–युक्त गर्भगृह द्वार मण्डप, प्राकार युक्त मण्डप, स्तम्भयुक्त अंतः भाग तथा प्रवेश मण्डप बनाया गया। कभी–कभी अलंकृत चौखटें भी निर्मित हुई।

जैन मन्दिरों में अन्य सम्प्रदाय के देवी–देवताओं का भी अंकन मिलता है। हिन्दू परम्परा के कुछ देवी–देवताओं जैसे शिव, विष्णु, राम, भरत, बलराम, पार्वती, सरस्वती, लक्ष्मी, नवग्रह, गंगा–यमुना, सर्प, यक्ष आदि के अंकन सामान्य रूप से जैन मन्दिरों में बनाए गये। बौद्ध परम्परा

की प्रज्ञापारमिता देवी, सर्प, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि का अंकन भी जैन परम्परा में अपनाया गया।

उत्तर एवं दक्षिण भारत के मन्दिरों में स्थानीय शैलियों हेमाडपन्थी (भूमिज), फांसना, कदम्ब आदि का भी प्रयोग किया गया। द्रविड़ शैली में जैन, बौद्ध, ब्राह्मण परम्पराओं के तत्कालीन अवशेषों में शैलीगत विविधता मिलती है। राष्ट्रकूट, यादव, चालुक्य, होयसल आदि की शैलियों में पृथकता थी। आन्ध्रप्रदेश में मन्दिरों की लघु अनुकृतियां स्तम्भाकार पाषाणों पर उत्कीर्ण की गयीं। होयसल मन्दिर आडम्बरहीन बनाये गये। चोल व पाण्ड्य स्थापत्य में कलाओं का सम्मिश्रण था। गंग और नोलम्ब कला में कलाकार की निपुणता दर्शनीय रही। सभी राजवंशों की विशिष्ट शैलियों में क्षेत्रीय प्रवृत्तियां स्पष्ट प्रभाव डालती प्रतीत होती हैं। सांस्कृतिक परिवर्तन के साथ साज–सज्जा भी अलग थी।

जैन मन्दिरों में अनेक अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर प्रामाणिक तथ्य मिलते हैं। इन अभिलेखों को मन्दिरों में या उनके समीप निर्माण, जीर्णोद्धार व दान के अवसरों पर उत्कीर्ण कराया गया था। अभिलेखों को सुविधा के अनुसार उत्तर एवं दक्षिण भारत से प्राप्त अभिलेखों में विभाजित किया जा सकता है। अनेक स्थानों से जैन मन्दिरों से सम्बन्धित जो अभिलेख प्राप्त हुए हैं वे न केवल जैन उपासना केन्द्रों के संरचनात्मक रूप पर प्रकाश डालते हैं अपितु इनसे अन्य समकालीन परम्पराओं के साथ जैन परम्परा के विकास की गति भी सूचित होती है।

जैन मन्दिरों के अलंकरण में विभिन्न प्रतीकों का प्रयोग किया गया। तदाकार और अतदाकार प्रतीकों को साधारण रूप से पांच वर्गों में बांटा गया। इनमें पंचपरमेष्ठि कमल प्रतीक के रूप प्रदर्शित किये गये।

जैन परम्परा में स्तूपों और गुफाओं के निर्माण के पश्चात् मन्दिरों के रूप में जैन स्थापत्य कला ने चरमोत्कर्ष प्राप्त किया। इनके निर्माण में अभिव्यक्त योजना और शिल्प से स्पष्ट है कि इनका निर्माण पूर्व परम्परा को ध्यान में रख कर किया गया था। विकास के फलस्वरूप स्वतंत्र संरचनात्मक मन्दिरों के शिल्प में अन्तर आया। सर्वप्रथम जैन शिल्पियों ने आत्म प्रधान कृतियां निर्मित कीं। कालान्तर में सांस्कृतिक प्रभाव के साथ यह प्रवृत्ति क्षीण होती–सी प्रतीत होती है। सम्भवतः भौतिक उपलब्धियों पर बल देने के कारण ऐसा हुआ अथवा सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक

एवं अन्य परम्पराओं के प्रभाव से हुआ। इस प्रकार से कला में निखार और विविधता भी आने लगी। साथ ही यदि यह कहा जाए कि मौलिकता का अभाव होने लगा तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

विश्लेषण के फलस्वरूप यह स्पष्ट हो जाता है कि कला का झुकाव गुणवत्ता की अपेक्षा परिमाण की ओर अधिक हुआ। एक ओर निश्चित और क्रमबद्ध निर्माण परम्परा के न रहने से जैन वास्तुकला की स्वतंत्र शैली स्थिर रह सकी। दूसरी ओर अपने मन्दिरों के निर्माण में जैनों ने विभिन्न क्षेत्रों और कालों की प्रचलित शैलियों को तो अपनाया किन्तु उन्होंने अपनी स्वयं की संस्कृति और सिद्धान्तों की दृष्टि से लाक्षणिक विशेषताओं को भी प्रस्तुत किया जिनके कारण जैन कला को एक अलग ही स्वरूप मिल गया।

सम्पूर्ण भारतवर्ष की जैन स्थापत्य कला का अध्ययन करते समय यह बात ध्यान रखने योग्य है कि बौद्ध या ब्राह्मणधर्मी अवशेषों की तुलना जैन अवशेषों से कदापि न की जाए क्योंकि साधना के क्षेत्र में जैन धर्म विशिष्ट एवं मौलिक रहा है। इसी आधार पर कला का भी मूल्यांकन करना चाहिए। बाह्य परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप जो अंतर दिखायी देता है वह कालक्रमानुसार बहुत अधिक नहीं है। विशेषताएं अपरिवर्तनशील ही प्रदर्शित लगती हैं। यही जैन स्थापत्य की निजी विशेषता है। अध्ययन से स्पष्ट है कि स्थापत्य में प्राचीन परम्परा का निर्वाह सदैव व्यापक रूप से किया गया। अलंकरण के प्रति कहा जा सकता है कि जैन शिल्पी अधिक उदार थे, अतः जैन कला में भाव प्रधानता के साथ सौंदर्य और कलात्मकता की निरन्तर प्रगति होती रही।

(लखनऊ विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग में डी.लिट्. की उपाधि के लिए निधि श्रीवास्तव, अब डॉ. श्रीमती निधि जौहरी, ने 2011 में 'जैन मन्दिरों की स्थापत्य कला का विशलेषणात्मक अध्ययन' विषय पर अपना शोध–प्रबन्ध प्रस्तुत किया था। इस शोध–प्रबन्ध को उन्होंने प्रो. डॉ. देवी प्रसाद तिवारी के निर्देशन में सम्पन्न किया था। 2011 में उन्हें डी.लिट्. की उपाधि प्रदान की गई थी। उक्त शोध–प्रबन्ध का सारांश लेखिका ने प्रस्तुत किया है। विषय गहन है। – सम्पादक)

189/54, खत्री टोला, मशक गंज, लखनऊ–226018

✧✧✧

खन्दारगिरि की जैन गुफायें

— श्री अजीत प्रताप सिंह

भारत में पहाड़ों को काटकर गुफाओं के निर्माण की परम्परा का प्रारम्भ तृतीय शताब्दी ई.पू. में हुआ था। मौर्यवंश के शासक सम्राट अशोक और उसके पौत्र दशरथ ने बिहार प्रदेश के गया जिले में स्थित 'बराबर' एवं 'नागार्जुनी' पहाड़ी में आजीवकों के लिए गुफाओं का निर्माण कराया था।[1] उड़ीसा प्रदेश के भुवनेश्वर जिलें में उदयगिरि एवं खण्डगिरि की पहाड़ियों पर कलिंग सम्राट खारवेल ने जैन साधुओं के लिए 35 शैलकृत गुफाओं को निर्मित कराया था।[2] गुप्तकाल में मध्य प्रदेश के विदिशा जिले में सांची से 3 कि.मी. दूर उदयगिरि की पहाड़ी पर 9 शैलकृत गुफाएं बनाई गई।[3] गुप्तकालीन अन्य शैलकृत गुफाओं में बादामी की गुफाएं, बाघ की गुफाएं और अजन्ता की गुफाएं उल्लेखनीय हैं। इन्हीं गुफाओं का अनुकरण करते हुए मध्य काल में तोमरवंशी शासकों ने ग्वालियर की पहाड़ी के चारों ओर जैन गुफा मन्दिरों का निर्माण कराया।[4] ग्वालियर दुर्ग में निर्मित शैल गुफाओं की लगभग समकालीन गुफाएं ग्वालियर सम्भाग के जिले गुना में चन्देरी से 2 कि.मी. की दूरी पर खन्दारगिरि की पहाड़ी पर स्थित हैं। खन्दारगिरि के निकट ही बुढ़ियाखोह, भड़ियाखोह आदि गुफाएं हैं। बुढ़ियाखोह के निकट संवत् 1132 (1075 ई.) का एक शिलालेख और मन्दिरों के भग्नावशेष मिले हैं। खन्दारगिरि में कुल 6 गुफाएं हैं, जिनमें 5 गुफाएं 15वीं शताब्दी ई. में तथा एक गुफा 13वीं शताब्दी में बनायी गई थीं।

खन्दारगिरि के गुफा मन्दिरों एवं मूर्तियों का निर्माण बलात्कारगण की जेरहट शाखा के भट्टारकों की प्रेरणा से स्थानीय जनता एवं व्यापारियों के द्वारा कराया गया। खन्दारगिरि की कन्दराओं (गुफाओं) के कारण स्थानीय लोग इन्हें 'कन्दार जी' के नाम से सम्बोधित करते हैं।[5] इन गुफाओं के नीचे सड़क के दूसरी ओर एक मानस्तम्भ स्थित है, जिसमें चौमुखी तीर्थंकर प्रतिमा विराजमान है।

गुफा सं0—1 :— यह गुफा खन्दारगिरि पहाड़ी के बायीं ओर अकेली निर्मित है। इसका द्वार बहुत छोटा है। अन्दर मात्र खड़े होने का स्थान है। इस गुफा की मूल प्रतिमा सम्भवनाथ की है, जो 3.6 फुट ऊंची है। यह प्रतिमा पद्मासन में स्थित है। इस प्रतिमा के परिकर में गज पर खड़े इन्द्र तथा

अनेक तीर्थंकर प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। मुख्य प्रतिमा के दायीं ओर चन्द्रप्रभु, शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, पद्मप्रभु और सम्भवनाथ की प्रतिमाएं हैं। इस गुफा में बाहुबली की एक अद्भुत प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थापित है, जिसे स्थानीय लोग 'औघड़बाबा' के नाम से पुकारते हैं। इस प्रतिमा के गले में सर्प, कटि के दोनों ओर सर्प, नाभि के ऊपर दोनों ओर दो चूहे, दोनों हाथों में दो–दो छिपकली तथा जांघों पर घुमावदार सर्प प्रदर्शित हैं। प्रतिमाओं के पार्श्व में चामरधारी खड़े हैं।

गुफा सं0–2 :– गुफा सं. 1 से नीचे उतरने पर यह गुफा मिलती है, जो सभी गुफाओं में सर्वाधिक दर्शनीय एवं लोकप्रिय है। इसमें एक 35 फुट ऊंची काले प्रस्तर पर निर्मित शांतिनाथ की प्रतिमा खड्गासन मुद्रा में निर्मित है, जिसे आंशिक रूप से खंडित किया गया है। इस प्रतिमा के नीचे अन्य तीर्थंकर खड्गासन प्रतिमाएं हैं। पार्श्व में हाथियों पर आसीन चामरधारी मुख्य प्रतिमा की सेवा में संलग्न हैं। शांतिनाथ की मुख्य प्रतिमा के दायीं ओर 16 फुट ऊंची कायोत्सर्ग मुद्रा में एक और तीर्थंकर प्रतिमा है। इसके बायीं ओर भी 16 फुट ऊंची पार्श्वनाथ की प्रतिमा थी, जिसे खोदकर निकाल लिया गया है, मात्र सर्पफण ही शेष है।

गुफा सं0–3 :– गुफा सं. 2 के कुछ ऊपर एक चट्टान के नीचे पहाड़ी को काटकर तीन तीर्थंकर प्रतिमाएं निर्मित की गयी हैं। इनमें एक प्रतिमा श्रेयान्सनाथ की है, जो 16 फुट ऊंची है। शेष दो तीर्थंकर प्रतिमाएं 8–8 फुट ऊंची हैं। इन प्रतिमाओं के दोनों पार्श्वों में गजारूढ़ चामरवाहक खड़े हैं।

गुफा सं0–4 :– गुफा सं. 3 से कुछ ऊपर झुकी हुई पाषाण शिला पर रथिका में तीन प्रतिमाएं पद्मासन मुद्रा में स्थित हैं। मुख्य प्रतिमा के दोनों ओर पार्श्वनाथ की प्रतिमाएं है। इनकी ऊंचाई लगभग 3.6 फुट है, और उनके पार्श्वों में गजारूढ़ चामरधारी खड़े हैं। पार्श्वनाथ की दोनों प्रतिमाओं के दोनों ओर यक्ष धरणेन्द्र और यक्षी पद्मावती हैं, जिनके सिर पर सर्पफण प्रदर्शित हैं। यह गुफा सं. 3 की समकालीन प्रतीत होती है।

गुफा सं0–5 :– इस गुफा में दो प्रतिमाएं विराजमान हैं – एक प्रतिमा तीर्थंकर की है तथा दूसरी प्रतिमा बाहुबली की है। बाहुबली की प्रतिमा कायोत्सर्ग मुर्द्रा में है। गले, कटि तथा जांघों पर सर्प लिपटे हैं। श्रीवत्स चिन्ह के दोनों ओर नाभि तक दो चूहे बने हैं। दोनों भुजाओं पर छिपकलियां दिखायी गयी हैं।

गुफा सं0–6 :– गुफा सं. 1 के दायीं ओर यह गुफा स्थित है, और यहां की अन्य गुफाओं से प्राचीन है। इसके एक मूर्तिलेख में संवत् 1283 (1226 ई.) उत्कीर्ण है। इस गुफा में 10 तीर्थंकर प्रतिमाएं तथा 3 यक्षी प्रतिमाएं हैं। ये यक्षी प्रतिमाएं अम्बिका की हैं, जिन्हें एक बालक को गोद में तथा दूसरे बालक को उंगली पकड़े दिखाया गया है। एक तीर्थंकर प्रतिमा खड्गासन में है तथा शेष 9 पद्मासन में हैं। ये सभी प्रतिमाएं सम्वत् 1283 की हैं। लेखों से ज्ञात होता है कि इनमें से कुछ प्रतिमाएं अन्तेशाह लम्बकंचुक (लंबेचू) द्वारा स्थापित करायी गई थी।

खन्दारगिरि की गुफाएं उन लोगों के समर्पण, त्याग तथा भक्तिभावना की प्रतीक हैं, जिन्होंने मध्य काल में अपने अथक परिश्रम से एकत्रित किये गये धन से इन तीर्थंकर प्रतिमाओं का निर्माण कराया। खन्दारगिरि के आस–पास जैन धर्म से सम्बन्धित गुफाओं एवं प्रतिमाओं का निर्माण यह दर्शाता है कि यह क्षेत्र उस समय तक इस्लाम के प्रभाव से अछूता रहा था तथा जैन धर्म के प्रति लोगों की आस्था अनवरत बनी हुई थी। जैन धर्म के प्रति लोगों की आस्था का परिणाम ही यह खन्दारगिरि की गुफाएं हैं, जिनका भारतीय स्थापत्य एवं कला में महत्वपूर्ण स्थान है।

---

1. Brown, Percy : Indian Architecture, Hindu Buddhist, पृ.10
2. उपाध्याय, उदयनारायण एवं तिवारी, गौतम : **भारतीय स्थापत्य एवं कला,** पृ0 101
3. वही, पृ.156
4. द्विवेदी, हरिहर निवास : **ग्वालियर के तोमर,** 1976, पृ0 345
5. जैन, बलभद्र : **भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ,** तृतीय भाग, 1976, पृ. 96–99

(लेखक व्यवसाय से अध्यापक हैं और जैन कला से सम्बन्धित शोध कार्य में संलग्न हैं। — सम्पादक)

प्राथमिक विद्यालय लवल. पो. निगोहां, जिला लखनऊ–226302

रे मन क्यों व्यथित

— श्री राजीव कान्त जैन

रे मन क्यों व्यथित   जीवन पथ, तू निरा पथिक
अनुमानित थी इन्द्र—सभा
मिले वीराने, शान्ति सभा
सुख—दुःख सब संभावित
रे मन क्यों व्यथित   जीवन पथ, तू निरा पथिक
दिन उजला, रात काली
ऊसर धरा या हरियाली
पथ पर सब नियोजित
रे मन क्यों व्यथित   जीवन पथ, तू निरा पथिक
अनुमान कभी गलत होते
पथ चौराहे पर खोते
थम नहीं यद्यपि शंकित
रे मन क्यों व्यथित   जीवन पथ, तू निरा पथिक
न अपेक्षा, न आंकाक्षा
निर्लिप्त बस डग भर
पथचिन्ह होये तब अंकित
रे मन क्यों व्यथित   जीवन पथ, तू निरा पथिक
थाम कोई एक डगर
ढूंढ मत, निश्चय कर
मंज़िल वहीं कर निर्मित
रे मन क्यों व्यथित   जीवन पथ, तू निरा पथिक
समेटता जा अपने झाम
हर पल एक इनाम
चुक जायेंगी सांसें संचित
रे मन क्यों व्यथित   जीवन पथ, तू निरा पथिक।

(श्री जैन भारतीय रेल सेवा में चीफ इंजीनियर, सिग्नल एवं टेलीकॉम, पूर्वी रेलवे, भुवनेश्वर, के पद पर कार्यरत प्रतिभाशाली कवि हैं, जिनके काव्य संकलन **सोनचिरैया फिर चहकेगी** का लोकार्पण गत 11 जून, 2014 को लखनऊ में एक विशिष्ट कार्यक्रम के अंतर्गत किया गया। — सम्पादक)

✧✧✧

सप्त चिन्तन–कण

– डॉ. परमानन्द जड़िया

ब्रह्म की आराधना करते रहो,
मुक्ति के हित साधना करते रहो।
हो न भ्रष्टाचार पीड़ित विश्व यह,
शुद्ध मन से कामना करते रहो।।

विश्व का केवल नियन्ता एक है,
भूलना इस वाक्य को अविवेक है।
यों तो 'जड़िया' मत मतान्तर हैं कई,
लक्ष्य अंतिम जो, सभी का एक है।।

लाये थे क्या साथ, क्या ले जाओगे,
कर्म फल अनिवार्यतः तुम पाओगे।
शास्त्र कहते हैं सुकृत यदि है प्रबल,
आदमी बनकर पुनः तुम आओगे।।

जन्मना मरना प्रकृति का है नियम,
हम न जायेंगे मनुज का है विभ्रम।
किन्तु 'परमानन्द' शाश्वत जीव जो,
मन वचन क्रम से अगोचर है अगम।।

वेद ही प्राचीनतम साहित्य है,
यह बताता ब्रह्म शाश्वत नित्य है।
ज्ञान का भण्डार 'परमानन्द' जो,
सत्य चित आनन्द है, आदित्य है।।

प्राण ही परमात्मा सर्वस्व है,
पंच भौतिक देह का वर्चस्व है।
प्राण रहते ही करो 'जड़िया' भजन,
शेष प्राणी पर यही राजस्व है।।

कर्म हो 'निष्काम' गीता का वचन,
किन्तु सात्विक हो हमारा आचरण।
हमने 'परमानन्द' देखा व्यक्ति के,
साथ रहते हैं उभय कारण करण।।

(88–वर्षीय चिन्तक कवि के ये भाव उनकी आस्था से प्रेरित हैं। तथापि इनमें जो सन्देश है वह सभी दार्शनिक चिन्तन में प्रतिबिम्बित होता है। जैन दार्शनिक विचारधारा में कर्म प्रधान है और वही संसार–चक्र का कारक है। – सम्पादक)

जड़िया निवास, 189/51, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ–226018

बेटों के बाप

— श्री अमर नाथ

दुनिया भर से श्रेष्ठ हम, हैं बेटों के बाप।
इन मूछों के बाल तक, गिन न सकेंगे आप।।
बेटा काला, चेचकी, अनपढ़, मूर्ख, गंवार।
सुन्दर, शिक्षित वधु मिले, संग विदेशी कार।।
रख–रखाव के व्यय सहित, हो दहेज में कार।
भरवाने पेट्रोल नित, भर दे घर भण्डार।।
कम दहेज लाई बहू, ज़िन्दा दई जलाय।
बिन दहेज निज लाड़ली, पति को रही नचाय।।
काली मोटी, भैंस सी, बेटी है शहज़ोर।
रूप खुदा की देन है, किसका चलता ज़ोर?
खोटी बिटिया को मिले, पति सीधा औ श्रेष्ठ।
शिक्षित, शक्ति–रूप सगुण, हो सेठों का सेठ।।
शादी बिना दहेज हो, मैं बेटी का बाप।
पर बेटा दस लाख में, जब बेटे का बाप।।
देना पड़े न कछु कभी, पाने की उम्मीद।
पड़ जाए देना कहीं, उड़ जाती तब नींद।।
नंगे, लोभी, ठग बसे, बेटी की ससुराल।
बसते वधु के मायके, भिखमंगे कंगाल।।
बेटी मेरी बहुगुणी, लेकिन बहू निकृष्ट।
समधिन तो प्यारी लगे, पत्नी लगती भ्रष्ट।।
बेटी को दामाद जब, सैर कराता नित्य।
बड़ा गुणी, आता नज़र, लगे सुहाना दृश्य।।
बेटा पत्नी साथ ले, कभी घूमने जाय।
दोनों ही बेशर्म हैं, शर्म बेच ली खाय।।
बेटी को, ससुराल में, करना पड़े न काम।
बहू निकम्मी आ गई, जब देखो आराम।।
बेटा पत्नी पीटता, निभा रहा पतिधर्म।
बेटी को दामाद जब पीटे, तो दुष्कर्म।।

बच्चा बहू के न हुआ, बांझ बहू में खोट।
बेटी कभी न मां बनी, पति में ही कुछ खोट।।
तुम बेटों के बाप बन, गए धर्म सब भूल।
बेटी लगती फूल सी, बहुएं लगती शूल।।
'अमर' धरा पर हों नहीं, गर बेटी के बाप।
बेटे सब क्वारें रहें, तब खुद सोचो आप?

(वयोवृद्ध रचनाकार श्री अमर नाथ ने एक पारिवारिक सामाजिक समस्या पर ध्यान आकर्षित किया है। परिवार में सुख शांति के लिए यह आवश्यक है कि बहू को बेटी के समान ही सम्मान और स्नेह दिया जाये। — सम्पादक)

401—ए, उदयन—1, बंगला बाजार, लखनऊ—226002

✧✧✧

समयोचित

माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के प्रति

— श्री सुरेश कुमार 'आवारा नवीन'

राजनीति के प्रखर आप ऐसे योद्धा हैं, कि —
काम ऐसे करें, ताकि देश ये धनी रहे।
फूंक—फूंक एक—एक, काम करियेगा आप,
ताकि आपकी इमेज, ऐसे ही हनी रहे।
मित्र बन शत्रुता की, चाल चला करते जो,
उनपे तो मोदी जी, भृकुटी तनी रहे।
आयें चाहे जितने उतार और चढ़ाव यहां,
भारत की धाक विश्व—मंच पर बनी रहे।।

(कवि ने सामान्य भारतीय नागरिक की भावना को अपनी शैली में व्यक्त किया है। भारत के राष्ट्रीय जीवन में कुछ नवीनता की आशा जाग्रत हुई है। — सम्पादक)

ई—46, सेक्टर एम., आशियाना, लखनऊ—226012

✧✧✧

सेवा के नाम पर घोटाला निन्दनीय

– श्री भूरचंद जैन

सेवा से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। इसका भारतीय जनजीवन एवं आध्यात्मिक संस्कृति में बड़ा महत्व है। मानव सहयोग एवं जीवदया के लिये सेवा को सर्वोपरि माना गया है। जब–जब भी प्राकृतिक आपदा – अकाल, अतिवृष्टि, भुखमरी, तूफान, आगज़नी, भूकम्प, बाढ़, महामारी आदि – का प्रकोप होता है, तब जन–धन की भयंकर हानि होती है। असंख्य अकाल मौत के आगोश में सो जाते हैं। कई शारीरिक रूप से विकलांग हो जाते हैं। उनके सामने भरपेट भोजन व पानी के लाले पड़ जाते हैं। जो कभी किसी के आगे हाथ नहीं पसारते थे वे भी प्राकृति आपदा से पीड़ित एवं प्रभावित होकर दर–दर की ठोकरें खाकर भीख मांगने को मजबूर हो जाते हैं। प्राकृति प्रकोपों एवं विपदाओं–आपदाओं से पीड़ित इंसान सहित सभी जीवों की सेवा करना सर्वोपरि धर्म समझा जाता है। इसे लेकर समाजसेवी नाना प्रकार की स्वयंसेवी संस्थाऐं खोलकर उसके मंच से तन, मन एवं धन से सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं। जो वास्तविक रूप से पीड़ितों की निःस्वार्थ सेवा करते हैं वे पुण्य के भागीदार होते हैं।

परन्तु आजकल अभावों, आपदा, विपदा, संकट की विभिन्न स्थिति से त्रस्त जनमानस एवं जीव मात्र की सेवा करने के उद्देश्य से कई लोग अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिये स्वयं सेवी संस्थायें खोलते हैं। इस प्रकार की स्वयंसेवी संस्थायें नारी उत्थान, वृद्ध–सेवा, पशु–देखरेख, बालसेवा केन्द्र, चिकित्सा–स्वास्थ्य के नाम पर और शिक्षा की ओट में खोली जाती हैं। इसके पीछे निष्ठा एवं ईमानदारी से पीड़ितों की सेवा करने का भाव नहीं होता अपितु येन–केन प्रकार से धन बटोरने का प्रयास होता है। स्वयं सेवा संस्था के माध्यम से फर्जी बिल बनाकर सरकार अथवा अन्य सेवाभावी संस्थाओं से धन बटोरना, कम खर्च कर अधिक रकम के बिल उठाना, संस्था के लिये खरीद की जाने वाली सामग्री में से चौथ वसूली करना, काम नहीं करवाकर उसके नाम से धन हड़पना, तथा सेवा के नाम पर अधिक से अधिक भ्रष्ट आचरण से धन बटोरना – समाजसेवी कहलाने वाले कथित लोगों ने पेशा बना लिया है।

सेवा के नाम पर भ्रष्टाचार करने वालों पर लोभ का भूत सवार रहता है। इन्हें किसी प्रकार की बदनामी की चिंता नहीं होती। आलोचना से ये कभी विचलित नहीं होते। संस्था में पैसा हड़पने के लिये पद पाने के लिये अनैतिक से अनैतिक आचरण करने एवं अपनाने में इन्हें तनिक भी शर्म नहीं आती। इस प्रकार कई स्वयं सेवी संस्थाऐं एकाधिकार के रूप

में बपौती बनी हुई हैं। कुछ संस्थायें बदनामी की सारी सीमायें लांघ कर शर्ममय बन चुकी हैं। कई संस्थाओं पर अनाप–शनाप धन के गबन के आरोप लग चुके हैं और जांच के दायरे से अपने को बचाने के लिए वे भ्रष्ट आचरण, अनैतिकता तथा राजनैतिक प्रभाव का सहारा लेती रहती हैं।

स्वयंसेवी, संस्थाओं में कार्य करते लोगों को मालामल होता देखकर राजनीति में दखल रखने वाले नेताओं ने अपने परिजनों, रिश्तेदारों आदि के नाम पर संस्थाऐं खोलकर उन्हें राजनैतिक पनाह देकर खुले आम लूटने का अवसर दे दिया है। आज जो स्वयं सेवी संस्थाएं कार्यरत है उनमें से प्रायः सभी बदनाम हैं, भ्रष्ट हैं, अनैतिक कार्यो में लिप्त हैं और यदि उनकी राजनैतिक दबाव से हटकर खुली जांच करवाई जाये तो करोड़ों रुपयों के गबन की पोल खुल सकती है।

बेसहारा, पीड़तों, अपाहिजों, दर्द से परेशान, भूख से तड़पते, पानी के लिये भटकते प्यासों, अत्याचार, अनाचार आदि विपदाओं, आफतों, मुसीबतों से प्रभावित लोगों की यदि लगन, निष्ठा, ईमानदारी, सद्भावना, संवेदना, करुणाभाव से सेवा की जाती है तो उसका लाभ पीड़ितों को निश्चित रूप से मिलेगा। ऐसी स्थिति में उनके पीड़ित दिल की आहें दुआयें बनकर बारम्बार आशीष देगी। यदि स्वयंसेवी संस्था के सेवाभावी लोग ऐसा आचरण वास्तविक रूप से व्यवहार में करते हैं तो वे सेवाभावी के रूप में न केवल वर्तमान समय में पूजनीय बने रहेंगे अपितु भविष्य में भी उनकी सेवाभावी भावना की स्मृतियां सदियों तक जन मानस के पटल पर बनी रहेंगी।

सेवा के नाम पर धन का अभाव न सदियों पहले था और न ही वर्तमान समय में है। यदि सेवा के नाम पर कोई भी भ्रष्टाचार को आश्रय देता है उसका सामाजिक स्तर पर न केवल बहिष्कार होना चाहिये अपितु उसे कड़ा से कड़ा दण्ड देने की व्यवस्था होनी चाहिये। तभी सेवाभावी स्वयं सेवी संस्थाओं के सेवा उद्देश्यों की निश्चित रूप से पूर्ति होगी और पीड़ितों, अपाहिजों, असहायों आदि की वास्तविक सेवा हो सकेगी, जिसकी देश को आवश्यकता है।

(लेखक प्रबुद्ध समाजसेवी चिन्तक हैं। उन्होंने अपनी अन्तर्व्यथा को व्यक्त किया है। समाज सेवा के लिए उन्मुख लोगों को इससे दिशा निर्देश प्राप्त होगा। – सम्पादक)

जूनी चौकी का वास, बाढ़मेर–344001 (राज.)

शिथिलाचार के प्रति जागरूकता अपेक्षित

– श्री रवीन्द्र मालव

समाज की तरह से ही साधुओं में भी शिथिलाचरण की समस्या नित्यप्रति विकराल होती जा रही है। आज देश और दुनिया में चल रही येन–केन प्रकारेण धन कमाने की होड़, नैतिक–मूल्यों में नित्य प्रति आ रही गिरावट, काले धन के बढ़ते महत्व, विलासिता का निरन्तर हो रहा विस्तार, धर्म–मार्ग के प्रति लगातार कम हो रही आस्था, धार्मिक–क्षेत्र के नेताओं अर्थात् साधुओं में बढ़ते शिथिलाचरण, इतर संस्कृतियों के प्रभाव से जैनों में भी आगम–विरुद्ध झाड़ा–फूंकी, जादू–मन्तर, ढोंग–धतूरे, गण्डे–तावीज़, के प्रचलन से श्रमण संस्कृति के पैरोकारों के लोक–व्यवहार में बहुत गिरावट आई है। अभी तक श्रमण संस्कृति में समाज का अपने साधुओं पर अप्रत्यक्ष रूप से कठोर नियंत्रण रहता था, किन्तु आज स्थिति उलट है। कालेधन वाले सेठियों, लालची पत्रकारों, सामाजिक संस्थाओं और शिथिलाचारियों की चौकड़ी के सहारे, शिथिलाचारी साधु खूब फल–फूल रहे हैं। पतन की पराकाष्ठा यह है कि ऐसे शिथिलाचारी साधुओं और कालेधन वाले सेठियों के मध्य जबरदस्त व्यावसायिक सांठ–गांठ हैं। शिथिलाचार का विरोध करने वाले चरित्रवान एवं धर्मप्रेमी श्रावकों का दमन करने के लिये, अहिंसक जैन समाज के ऐसे साधु हिंसा तक का सहारा लेते है, सशक्त व्यक्तियों को, गार्ड्स को और बाहुबलियों को पालते हैं तथा उन्हें साथ लेकर चलते हैं। ऐसे सेठिये शिथिलाचारी मुनियों को अपना प्रोडक्ट समझते हैं, व अपने कालेधन सप्रोडक्ट का प्रचार–प्रसार कर उनके चमत्कार–अतिशय की झूठी कथायें प्रचारित करते हैं, उन्हें महिमा मण्डित करते है, उनके तड़क–भड़क वाले खर्चीले कार्यक्रमों का आयोजन कर, उसमें सत्ताधारी नेताओं, अधिकारियों आदि को बुलाकर, उस साधु से आशीर्वाद दिलवाकर, उन्हें भरमाते हैं और इस प्रकार अपने उत्पाद का विज्ञापन करते हैं, तथा उनकी मार्केटिंग कर विभिन्न भड़कीले आयोजनों में बड़ी–बड़ी बोलियां लगवाकर, मध्यम वर्गीय, धर्म भीरू लोगों की जेब से मोटी रकम निकलवाते हैं। यह रकम बाद में, आयोजन से जुडे काले धन वाले व्यवसायियों के उद्योग–व्यापार में लग जाती है। ऐसे शिथिलाचारी साधु भी अपने धार्मिक आयोजनों में ऐसे सेठियों को ऐसी उपाधियां देते हैं जैसे वे साधु महाराज न होकर कोई विश्वविद्यालय हों।

दुर्भाग्य से काले धन के सहारे ऐसे सेठियों को इन्द्र, कुबेर, देव और जाने क्या–क्या बनाकर हाथी या रथ या सुसज्जित वाहनों पर बैठाकर, उनकी शोभा–यात्रा निकलती है। पंच–कल्याणक हों तो तीर्थंकरों के माता–पिता भी बन सकते हैं। अभी तक तीर्थंकर नहीं बनते थे, पर अब यह गरिमा भी चूर–चूर हो रही है।

भगवान महावीर का जीवन्त अभिनय

ग्वालियर में एक मुनि ने कहा कि वे "महावीर जयन्ती" पर भगवान के जन्म कल्याणक का जीवन्त प्रदर्शन करेंगे। यह लेखक तब अस्वस्थ होकर नर्सिंग होम में इलाज करा रहा था। वहीं से लेखक ने समाचार–पत्रों में बयान जारी कर कहा कि – "यह हमारी मान्य धार्मिक परम्पराओं के विरुद्ध है, पंच–कल्याणक में भी किसी भी मनुष्य ने यहां तक कि मुनि ने भी, आज तक के इतिहास में, किसी तीर्थंकर का अभिनय नहीं किया है।" तथापि, भीड़–भाड़ भरी सभा में उन मुनि महाराज ने भगवान महावीर जयन्ती के दिन "भगवान महावीर जन्म कल्याणक नाटक" का मंचन किया, और स्वयं भगवान महावीर का अभिनय किया। अच्छा होता कि वे मुनि न होकर फिल्मों में भाग्य आज़माते। उन्हांने प्रवचन में इस लेखक के प्रति कहा कि "एक व्यक्ति ने मेरे अभिनय करने पर आपत्ति की है, मैं एक मुनि हूं, मैं उसे श्राप देता हूं कि वह व्यक्ति अब नहीं बचेगा, नष्ट हो जायेगा।" उनसे जुड़े लोग निरंतर यह प्रचार करते रहे कि महाराज जी ने श्राप दिया है, ये अब नहीं बचेगा। मेरी हालत प्राकृतिक रूप से बहुत बिगड़ी, तीन बार चिकित्सकों ने कहा कि, "हालत बहुत नाजुक है, इनके बचने की संभावना लगभग नही है।" दो वर्ष लगे ठीक होने में। इस दौर में मिलने आने वाले कई लोग कहते रहे, "महाराज ने श्राप दिया है, आपका बचना असंभव है।" परिजनों को कहा – "महाराज से मिल लो, वे श्राप वापिस ले लें, वरना ये बच नहीं पायेगें।" किन्तु जैन दर्शन का समर्पित विद्यार्थी होने के कारण प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मेरा आत्मबल बना रहा, मैं सभी से यही कहता रहा कि हमारे धर्म के अनुसार सब कुछ हमारे कर्मो के फल के रूप में ही घटता है, श्राप देने और उससे लोगों का विनाश करने की भ्रान्ति कुछ अन्य धर्मो में है पर जैन धर्म में नही है। और वही हुआ। दो वर्ष की जद्दो–जहद के बाद मैं पूर्ण स्वस्थ होकर पुनः सक्रिय हूं। वह श्राप निष्फल रहा। मुझे सन्तोष है कि मेरे परिजनों ने भी अपना आत्मबल कमजोर नहीं पड़ने दिया।

हमारे जैन समाज में, जहां मुनियों की आचार संहिता पर "**मूलाचार**" जैसा महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसमें मुनियों के लिये "अठ्ठाईस मूल गुणों" का वर्णन है, और इन्हीं अठ्ठाइस मूल गुणों के कारण ही आज तक दिगम्बर जैन मुनि, सम्पूर्ण जगत में त्याग और तपस्या के प्रतीक माने जाते रहे हैं। आज भी जहां कुछ आचार्यगण और उनके शिष्य साधु **मूलाचार** में वर्णित मर्यादा का कठोरता से पालन करते है, वहीं बड़ा प्रतिशत ऐसे साधुओं का है जो समाज में सम्मान पाने को दिगम्बर साधु तो अवश्य हो जाते हैं किन्तु "धर्म के मर्म" को जानने या मानने का कोई प्रयास करने के बजाए वे अपने गृहस्थ जीवन के संस्कारों और शिथिलाचरण की गठरी ढोते रहते हैं। पूर्वानुसार चल रही मार्केटिंग के कारण समाज इनके झांसे में वैसे ही आ जाती है, जैसे वह विज्ञापनों से प्रभावित होकर रोज कई रद्दी प्रोडक्ट खरीदती है।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि सम्पूर्ण समाज ही शिथिलाचार की समर्थक है। आज भी समाज का एक बड़ा वर्ग, खासकर शिक्षित युवा वर्ग, शिथिलाचारी साधुओं के विरोध में है, किन्तु वह संगठित नहीं है। कुछ समय पूर्व तक जहां महासभा ही ऐसा एक मात्र संगठन था जो शिथिलाचार का पुरजोर समर्थन करता था और शिथिलाचारी साधू भी उसका भरपूर समर्थन करते थे, वहीं परिषद शिथिलाचार का प्रखर विरोध करती थी और महासमिति दबी जबान से इस पर कानाफूसी करती थी। किन्तु दिगम्बर जैन समाज का यह दुर्भाग्य है कि परिषद और महासमिति दोनों पर आज महासभा से संस्कारित सेठियों का कब्जा है और बुद्धिजीवी इन दोनों से बाहर हो गए हैं।

आगरा की जैन समाज की युवा शक्ति की जागरूकता

दिगम्बर जैन समाज को दिन दूनी रात चौगुनी गति से फैल रहे "शिथिलाचार के अंधकार के कुहासों" के बीच आगरा की दिगम्बर जैन समाज की युवा शक्ति ने हाल ही में, इस कुहासे को तोड़ कर, आशा का एक दीप जलाया है। एक दिगम्बर जैन मुनि, आगरा चातुर्मास के लिये आए थे। शीघ्र ही उन्होंने अपना कारोबार फैलाना शुरू किया। परेशान महिलाओं की पहचान कर उन्हें सूर्यास्त के पश्चात् बुलाना शुरू किया। उन्हें यह भरोसा दिलाया गया कि वे उनके सारे कष्ट हर देंगे, पर अन्दर सब कुछ गड़बड़ चल रहा था। किन्तु कुछ जागरूक महिलाओं से यह बात वहां के कुछ नौजवानों तक पहुंची। एक दिन अचानक मुझसे भी एक अनजाने व्यक्ति ने नाम बताए बिना सम्पर्क किया, और जानकारी दी, तथा मार्ग–दर्शन चाहा। मैंने उन्हें सुझााव दिया कि धर्म भीरू समाज में कुछ भी

क्रान्तिकारी कदम उठाने से पूर्व, प्रमाण जरूर एकत्र करें। मैंने उन्हें यह सुझाव भी दिया कि वे, किसी भी तरकीब से, उस कमरे में सी.सी.टी.वी. कैमरा लगायें, और कुछ दिन की रिकार्डिंग करें। जब कोई ठोस प्रमाण एकत्र हो जाये तो मुनिश्री का समारोह पूर्वक "वस्त्रालंकरण" कर दें। सारे प्रयास गुप्त हों, और बुजुर्गों, नेताओं व महिलाओं को यथासंभव न बतायें। मैंने तो सहज ही, उस युवा को कुछ सुझाव दिये थे। मैं उन्हें अभी तक नहीं जानता। किन्तु इस संवाद के लगभग दो सप्ताह बाद मुझे आगरा से यह समाचार सुनने को मिला कि आगरा की युवा शक्ति में प्रगतिशील विचारों के कई युवकों ने समूह बनाकर, मुनिश्री के कक्ष में सी.सी.टी.वी. कैमरा लगवाया, कुछ दिन रिकार्डिंग की, फिर समाज के नेताओं को दिखायी। स्वभावगत रूप से उन नेताओं ने, जिनमें परिषद व महासमिति से जुड़े नेता भी थे, समाज की बदनामी का डर दिखाकर, इसको आगे न बढ़ाने की भी बात कही। पर युवा शक्ति ने ठान ली थी, अतः वीडियो रिकार्डिंग वृहद रूप से समाज को दिखाई गई और मुनिराज का समारोह पूर्वक वस्त्रालंकरण कर उन्हें कपड़े पहना दिये गए और गृहस्थ जीवन में वापस भेज दिया गया। इस वस्त्रांलकरण समारोह की भी वीडियोग्राफी की गई। सम्बन्धित समाचार प्रिंट व इलैक्ट्रानिक मीडिया में भी आया है। पता चला है कि आगरा से भागकर वे पूर्व मुनि ग्वालियर तथा अन्य कई स्थानों पर गये, और कुछ मुनियों से मिले कि वे प्रायश्चित करने को तैयार हैं – उन्हें फिर दीक्षा दे दें। अभी तक उन्हें नया गुरू नहीं मिला है।

मैं अपनी ओर से तथा मेरे जैसे विचार रखने वाले सुधर्म प्रेमियों की ओर से आगरा के दिगम्बर जैन समाज की युवा शक्ति को नमन करता हूं व साधुवाद देता हूँ तथा देशभर की दिगम्बर जैन युवाशक्ति का आह्वान करता हूं कि वे इस घटना से सबक लें, सीखें, और अपने–अपने क्षेत्र में सजग रहें। समाज से भी अपील करता हूं कि वह इस बात पर विचार करें कि जिन कक्षों में भी साधु–साध्वी ठहरें वहां सी.सी.टी.वी. कैमरे अवश्य लगाए जायें, इससे उन्हें मर्यादित रखने में सहायता मिलेगी।

(श्री रवीन्द्र मालव वयोवृद्ध विचारक एवं पत्रकार हैं। विगत प्रायः 6 दशक से वह सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय हैं। हाल ही में उन्हें जैन पत्रकार संघ का अध्यक्ष भी निर्वाचित किया गया है। शिथिलाचार पर उनकी चिन्ता समयोचित एवं मननीय है। – सम्पादक)

प्रेम शांति भवन, फालके बाजार, ग्वालियर–474001

✦✦✦

आचार्य तुलसी की अनुपम देन 'अणुव्रत'

— **डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव**

जैन धर्म की तेरहपंथ आम्नाय के आचार्य तुलसी 20वीं शती के महान संत थे। वे भौतिक गार्हस्थ्य से पूर्ण उदासीन अवश्य थे परन्तु लोक जीवन से विरक्त नहीं थे। उन्होंने भारतीय संत परम्परा का दृढ़ता और सफलता पूर्वक पालन किया था। हमारे देश में समाज सुधार संत की साधना का मुख्य लक्ष्य रहा है – **'सठ सुधरहिं संत–संगत पाई'**। जब–जब समाज के लोगों में नैतिक गिरावट आयी संतों ने अपने सदुपदेशों से उनका सही मार्ग दर्शन किया।

आचार्य तुलसी वस्तुतः प्रायः चार शती पूर्व हुए **रामचरितमानस** के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास की परम्परा के संत थे। गोस्वामी तुलसीदास ने संत होते हुए भी दिव्य आदर्श और मानवीय लोक–यथार्थ के बीच एक स्वस्थ और सद्भावी समन्वय की आवश्यकता उस युग के अनुकूल अनुभव की थी और वे संत साधना को लोक–व्यवस्था से अलग–थलग नहीं रख सके थे। यदि उन्हें लोक और लोक–मंगल की चिन्ता न होती तो महन्त की भांति किसी मन्दिर, मठ या आश्रम में भजन कीर्तन करते और लोकोत्तर परम सत्ता या ईश्वर के ध्यान में शान्ति या मोक्ष पाने का प्रयास करते। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने ईश्वर के प्रति अपनी भक्ति भावना का सदुपयोग लोक–मंगल के लिए किया। लोक मंगल से इतर ईश्वर के अवतार का अन्य दूसरा सार्थक हेतु हो भी क्या सकता है –

जब जब होई धरम की हानी, बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।
तब तब धरि प्रभु विविध सरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।

संत साहित्य के सुधी समीक्षकों ने गोस्वामी तुलसीदास के ग्रंथ **रामचरित मानस** को तत्कालीन पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक आवश्यकताओं के अनुकूल उसे व्यष्टि और समष्टि दोनों के परिष्कार की कुंजी माना है।

आचार्य तुलसी भी तुलसीदास जैसे ही संत थे। 'कहने को तो वे जैन धर्म के तेरापंथ के आचार्य थे, परन्तु उनकी संत–साधना का उद्देश्य केवल अपने लिए शांति और मोक्ष नहीं था, अपितु वह लोक जीवन में शांति, सुख और सुव्यवस्था के लिए समर्पित थी। प्राचीन काल में भी संत गृहस्थ

जीवन से दूर आश्रमों के शांत एकान्त वातावरण में अपनी साधना में निमग्न अवश्य रहते थे परन्तु वे लोक जीवन के लिए सत्परामर्श सदैव दिया करते थे। राजा या शासक उनसे मार्गदर्शन पाते थे। और तो और, घूम–घूम करके भी संत लोग समाज को सदैव जागरूक और सदाचारी बनाया करते थे। शायद **'रमता जोगी बहता पानी'** वाली कहावत इसी यथार्थ का बोध कराती है। आचार्य तुलसी ने भी भारतीय संत परम्परा का समुचित निर्वाह किया। उन्होंने देश के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक पदयात्राएं करके न केवल देशवासियों को सच्चाई, भलाई, न्याय और चरित्र की राह दिखायी, अपितु राजनेताओं की समस्याओं के भी सम्यक् समाधान निकालने में अपना अमूल्य योगदान दिया।

स्वाधीनता आन्दोलन के समय देशवासियों की एकता, दृढ़ता, निष्ठा, भाईचारा, त्याग, बलिदान आदि को आचार्यश्री ने देखा था। परन्तु आजादी मिल जाने के बाद धीरे–धीरे राष्ट्रप्रेम और त्याग–बलिदान पीछे पड़ने लगे, स्वार्थी और सुविधाभोगी मानसिकता दिनों दिन बढ़ने लगी। इससे भोग–विलास की प्रवृत्ति पनपने लगी और चारित्रिक आदर्श खोखले पड़ने लगे। चुनावों में धन–बल का प्रयोग, राजनीति में भ्रष्टाचार, धर्म में राजनीति, युवापीढ़ी में नशा, फैशन और फूहड़ अपसंस्कृति, सत्ता और शक्ति का अकूत संचय, तथा अमर्यादित और अनैतिक जीवन–शैली ने हमारे देश को चारित्रिक पतन के गहरे खड्ड में धकेल दिया। आचार्य तुलसी का संत जाग रहा था और देश के इस चारित्रिक पतन को ध्यान से देख रहा था।

चरित्र किसी व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र की सबसे बड़ी थाती है, वही उसकी शक्ति है और उसी से उस व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र की अपनी एक अलग पहचान बनती है। सम्पत्ति, स्वास्थ्य और सदाचरण जीवन के लिए सभी आवश्यक हैं, परन्तु इनमें अधिक महत्व सदाचरण का होता है। सदाचरण के माध्यम से सम्पत्ति और स्वास्थ्य दोनों की प्राप्ति संभव है, परन्तु उसके अभाव में न स्वास्थ्य रह पाता है और न सम्पत्ति। इसीलिए कहा गया है – When wealth is lost nothing is lost, when health is lost something is lost, but when character is lost everything is lost - अर्थात् धन के नष्ट हो जाने पर कुछ भी नष्ट नहीं होता है, स्वास्थ्य के नष्ट हो जाने पर कुछ नष्ट होता है, परन्तु चरित्र के नष्ट हो जाने पर सब कुछ नष्ट हो जाता है।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए आचार्य तुलसी ने अपने देश को एक चरित्रवान और शक्तिशाली राष्ट्र बनाने के उद्देश्य से सन् 1949 में एक आन्दोलन का सूत्रपात किया। वह था **'अणुव्रत आन्दोलन'** – अणु यानी छोटा और व्रत यानी नियम। अणुव्रत छोटे–छोटे नियमों के पालन के लिए आचार संहिता–सी थी। इससे पहले भी चारित्रिक उत्थान के लिए जैन धर्म में पंच महाव्रतों (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) का मार्ग सुझाया गया है। ये महाव्रत, यानि बड़े कठोर नियम हैं जिनका अनुपालन सामान्य जन के लिए अत्यंत कठिन है। इसीलिए आचार्य तुलसी ने अणुव्रत की बात की जिसका पालन समाज का हर व्यक्ति आसानी से कर सकता था। अणुव्रत के अंतर्गत निर्धारित किये गये कतिपय नियम निम्नलिखित हैं –

1 निरपराध प्राणी की हत्या न करना और न किसी को चोट पहुंचाना या सताना।

2 न किसी पर आक्रमण करना, न उसमें सम्मिलित होना, न कोई तोड़–फोड़ करना – यानि शान्ति का मार्ग अपनाना और पारस्परिक बातचीत से झगड़ों का निपटारा करना।

3 मानवीय एकता में विश्वास रखना, जात–पांत, ऊंच–नीच और साम्प्रदायिक भेदभाव न रखना।

4 धार्मिक सहिष्णुता का पालन करना और सबको अपने–अपने ढंग से धर्म के पालन की छूट देना।

5 व्यवहार में सच्चाई, ईमानदारी और दूसरे की भलाई का ध्यान रखना।

6 व्यापार, व्यवसाय अथवा उद्योग में प्रामाणिक रहना, मुनाफाखोरी से बचना, मिलावट, घटतौली और ठगी से दूर रहना।

7 इन्द्रिय संयम का विकास करना।

8 लोभ, मोह, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि से बचना।

9 नशीले पदार्थो का सेवन न करना।

10 किसी भी प्रकार के दुर्व्यसन से बचना।

11 पर्यावरण प्रदूषण के निवारण के लिए और पर्यावरण–संतुलन के लिए सदैव जागरूक रहना।

अणुव्रत के नियमों में ऐसा कोई नियम नहीं है जिसका पालन करना किसी के लिए भी दुष्कर हो। बस केवल आस्था और दृढ़ इच्छा–शक्ति की आवश्यकता है। अणुव्रत के पालन से जीवन के जो

मानवीय मूल्य हैं उनकी प्रतिस्थापना होती है। यह जीवन का परिष्कार करता है, मनुष्य को मनुष्य बनाता है। अणुव्रत न कोई धर्म है और न सम्प्रदाय। सभी धर्मों के और सभी सम्प्रदायों के अनुयायी अणुव्रत का पालन कर सकते हैं। हिन्दु हों, मुसलमान हों, ईसाई, पारसी या सिख हों, सभी अणुव्रती बन सकते हैं। ऐसा करने से उनके धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक पूजा–पाठ में किसी प्रकार की अड़चन नहीं आ सकती। अणुव्रत न किसी धर्म का विरोधी है और न किसी पंथ या मज़हब का।

किसी भी धर्म के दो पहलू होते हैं – सिद्धांत और पूजा–पद्धति। जहां तक धर्म के सिद्धांत पक्ष का प्रश्न है, यह सभी सम्प्रदायों, पंथों अथवा मज़हबों में पूर्ण रूप से एक जैसा होता है। सत्य, अहिंसा, दया, दान, परोपकार, पवित्रता, प्रेम, विनम्रता आदि संसार के सभी धर्मो में सिद्धांत के रूप में स्वीकार किये गये हैं। वस्तुतः ये सभी नैतिक गुण हैं जो किसी भी धर्म की आधार शिला होते हैं। दुनिया में ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसमें इन नैतिक गुणों में से किसी एक का भी विरोध किया जाता हो। इसी तथ्य के आलोक में कहा जाता है कि सारे संसार का धर्म एक है, उसे मानव धर्म का नाम दिया जा सकता है। हां, पंथ, सम्प्रदाय या मज़हब अपने–अपने इष्ट देवों और पूजा–पद्धतियों के कारण अनेक हैं।

इस दृष्टि से अणुव्रत संसार के सभी धर्मो का सैद्धान्तिक स्वरूप है। यह सार्वजनिक है, सामुदायिक है और वैश्विक है। अणुव्रत नैतिक नियमों का समाहार है, सहज और सदाचारी जीवन शैली है, कथनी और करनी का भेद मिटाने, मनुष्य को सज्जन बनाने तथा जीवन में व्यवहार की विसंगतियां दूर करने के लिए अणुव्रत एक सरल और सीधा मार्ग है।

अणुव्रत जात–पांत, ऊंच–नीच के भेदभाव से परे सभी जाति, रंग, वर्ग और व्यवसाय करने वालों के लिए समान रूप से अनुपालनीय है। यह वैयक्तिक होने के साथ–साथ एक सामाजिक संयम और स्वस्थ व्यवस्था का मूल मंत्र है। इसके पालन से अपना, अपनी जाति का, अपने वर्ग का, अपने व्यवसाय का तथा अपने समाज और राष्ट्र का भला किया जा सकता है। किसी भी देश अथवा समाज की धुरी व्यक्ति होता है। यदि सभी व्यक्ति 'अणुव्रती' बन सकें तो उनका देश अथवा समाज भी शक्तिशाली और संगठित बन सकेगा, इसमें किंचित् सन्देह नहीं है।

अणुव्रत किसी धर्म पंथ या मज़हब विशेष का प्रचार नहीं करता है और ना सन्यास लेने का उपदेश देता है। इसका आधुनिक विज्ञान और तकनीक से भी कोई विरोध नहीं है। जो जिस पंथ या धर्म में हो वहीं रहकर वह अणुव्रत के छोटे–छोटे नियमों का पालन कर सकता है। उसे अपने जीवन के किसी पक्ष में बदलाव की कोई आवश्यकता नहीं है। हां, उसे संयम आत्मिक अनुशासन और दृढ़ इच्छा शक्ति का विकास करना होगा। अणुव्रत के पालन से आत्मिक शांति मिलती है। मन सदैव प्रसन्न रहता है। ग्लानि और तनाव से मुक्त रहने के प्रबन्धन से युक्त व्यक्ति सदैव स्वस्थ एवं शक्ति सम्पन्न रहता है।

अणुव्रत का स्वरूप बहुत कुछ **मौर्य सम्राट अशोक के अभिलेखीय 'धम्म'** (धर्म) जैसा जान पड़ता है। अन्तर मात्र इतना है कि अशोक ने इसे धर्म कहा है। सर्वविदित है कि अशोक बौद्ध धर्मावलम्बी राजा था और बौद्ध धर्म के चतुर्दिक प्रचार–प्रसार के लिए उसने अपनी सारी क्षमता लगा दी थी, किन्तु उसने अपनी प्रजा को बौद्ध धर्म अपनाने का आदेश देना तो दूर, सलाह तक नहीं दी। उसने अपने समूचे राज्य में शिलाओं और शिलास्तंभों पर अपनी प्रजा के लिए धर्म विषयक अभिलेख खुदवाये थे। इन्हें उसने **धम्म लिपि** अर्थात् 'धर्म के लेख' कहा था। एक स्तम्भ में अशोक ने अपने उस धर्म की विवेचना प्रस्तुत की है। 'किमंचु धम्मेति' अर्थात् धर्म क्या है, यह प्रश्न पूछकर उसने आगे दिये गये उत्तर में धर्म के लक्षणों को गिनाते हुए कहा है – "अपासिनवे बहुकयाने दयादाने सचे सोचये मादवे" अर्थात्, पाप के अभाव में (अपासिनवे), कल्याण की अधिकता में (बहुकयाने), दया में, दान में (दयादाने), सच्चाई में (सचे), शुचिता यानी पवित्रता में (सोचये) और मृदुता या विनम्रता (मादवे) में धर्म होता है। अशोक की दृष्टि में अहिंसा, जनकल्याण, दया दान, सत्य, पवत्रिता, विनम्रता और इसके अतिरिक्त संयम, कृतज्ञता तथा भावशुद्धि ही धर्म के प्रमुख लक्षण हैं। वस्तुतः ये सभी नैतिक गुण हैं जो सभी धर्मो का सार और आधार होते हैं। अशोक भलीभांति जान चुका था कि यदि उसके राज्य में सभी धर्मों और सम्प्रदायों के अनुयायियों में नैतिक गुणों और मूल्यों का विकास हो जायेगा तो साम्प्रदायिक सद्भाव अपने आप स्थापित हो जायेगा। वह यह भी जानता था कि नैतिक मूल्यों से प्रजाजनों में चारित्रिक विकास होगा। प्रजा का चरित्रबल राष्ट्र या राज्य का चरित्र बल

होता है। इससे राष्ट्र संगठित, बलवान और खुशहाल होता है। इसीलिए सम्राट अशोक संसार के महान राजाओं में मूर्धन्य माना जाता है। अशोक द्वारा प्रचारित नैतिक मूल्यों के उत्थान को ध्यान में रखकर ही स्वाधीन भारत ने **अशोक चक्र** और उसके सिंह शीर्ष को अपनी राजमुद्रा बना रखा है।

अशोक के ही समान आचार्य तुलसी ने, जो जैन धर्म की तेरापंथी आम्नाय से मूलतः सम्बद्ध थे, अपने निजी धर्म का उपदेश न देकर भारतीय जनमानस को अणुव्रत जैसी पारसमणि प्रदान की जिसमें न जैन धर्म की कठिन तपस्या थी और न कठोर सिद्धांत। स्वाधीन भारत में स्वार्थ, लोभ, हिंसा, आतंक और भ्रष्टाचार के जो नुकीले विषाक्त बाण समाज को क्षत–विक्षत कर रहे हैं, उनसे राष्ट्र की रक्षा के लिए उन्होंने अणुव्रत का कवच प्रदान किया है। अणुव्रत जन जागरण का आन्दोलन है। यह अंधकार में प्रकाश की एक आशा किरण है। आपा–धापी और ऊहा–पोह भरे समाज और देश के लिए अणुव्रत आज नितान्त प्रासंगिक है। ज्यों–ज्यों इसका प्रचार–प्रसार और अनुपालन होगा त्यों–त्यों देश की छवि में सुधार होगा, देशवासी चरित्रवान, दृढ़व्रती और सदाचारी होंगे। जिस प्रकार आज समूचा सभ्य संसार गांधीवादी विचारधारा के माध्यम से ही विश्व शांति की संभावना स्वीकार करता है, उसी प्रकार आगे आने वाली पीढ़ियां आचार्य तुलसी के अणुव्रत के माध्यम से स्वस्थ, सम्पन्न, सुखी और सदाचारी संसार का सपना संजोकर उसे साकार और सार्थक करने का प्रयास करेंगी। वस्तुतः अणुव्रत संसार और मानवता को आचार्य तुलसी की एक अनुपम ऐतिहासिक देन है। अणुव्रत के प्रणेता ऐसे महाव्रती संत आचार्य तुलसी को शत–शत बार नमन!

(वयोवृद्ध डॉ. श्रीवास्तव प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व के सेवा–निवृत्त प्रोफेसर हैं। भारतीय इतिहास के परिप्रेक्ष्य में वे समकालीन परिदृश्य का आंकलन करते रहे हैं। आचार्य तुलसी के सम्पर्क में आने का भी उन्हें सुअवसर प्राप्त रहा और आचार्य तुलसी के अणुव्रत आन्दोलन की वर्तमान राष्ट्रीय जीवन में उपयोगिता से वे प्रभावित हुए। आचार्य तुलसी की जन्म–शताब्दी के उपलक्ष में **शोधादर्श 79** में प्रस्तुत स्मरणांजलि से प्रेरित होकर उन्होंने अपने उपरोक्त उद्‌गार निबद्ध किये जो आचार्य तुलसी के राष्ट्रीय–सामाजिक क्षेत्र में प्रदत्त योगदान की गुणवत्ता को प्रभावी रूप से व्यक्त करते हैं। – सम्पादक)

1–बी, स्ट्रीट 24, सेक्टर 9, भिलाई–490009 (छ.ग.)

✧✧✧

परिग्रह से कैसी प्रभावना?

— श्री अजित जैन 'जलज'

अर्थ से धर्म नहीं होता है, बल्कि धर्मपूर्वक अर्थ उपार्जन से ही अर्थ सार्थक होता है। आज जैन समाज धन सम्पदा के बल पर पूजा–प्रतिष्ठा का जयघोष कर रहा है, क्या इससे धर्म की सच्ची प्रभावना हो रही है? क्या इससे समाज, धर्म, देश और विश्व को सकारात्मक संदेश जा रहे हैं?

प्राचीन आचार्यों कुन्द–कुन्द, अमृतचन्द्र और समन्तभद्र ने अपरिग्रह को धर्म का शिखर बताया है। **पंडित पद्मचन्द्र शास्त्री** ने, वीर सेवा मंदिर, नई दिल्ली, से प्रकाशित अपने ग्रन्थ **मूल जैन संस्कृति : अपरिग्रह** में सामाजिक परिदृश्य को देखते हुए लिखा है कि –'जैन न्याय–अन्याय जिस किसी भी भांति हो, परिग्रह की बढ़वारी में जुट पड़े हैं और उनका ध्यान लाखों कमाकर हजारों मात्र दान देने की ओर केन्द्रित होता जा रहा है।.......आत्मा की कथा करने वाले बड़े–बड़े वाचक भी परिग्रह संचयन में लगे रहे और वे भी अहिंसा दान आदि के विविध आयामों से विविध रूपों में परिग्रह संचयन और मान पोषण आदि में लीन रहे जिससे वीतरागता का प्रतीक अपरिग्रहत्व–जैनत्व लुप्त होता रहा। हमारी दृष्टि में अपरिग्रहवाद को अपनाने के सिवाय जैनधर्म के संरक्षण का अन्य उपाय नहीं।'

आज धर्म प्रभावना के कार्यक्रमों की धूम है। गांव से लेकर महानगर तक साल भर विधि–विधान, भजन–कीर्तन के डी.जे. जैन धर्म की जय जयकार कर रहे हैं। ऐसी जैन बस्ती दुर्लभ है जहां किसी वर्ष कोई इन्द्र नहीं बने। अगर सारी इन्द्रियां भोगों के लिये अशक्त हो गयीं तो भगवान के माता–पिता बनने का सौभाग्य कौन श्रावक श्रेष्ठी छोड़ना चाहेगा? तीन लोक के नाथ के सामने श्राविकाओं के मनोहर नृत्य फिल्मी धुनों पर न हों तो धर्म प्रेमी श्रावकों को मजा नहीं आता।

क्षु. मनोहर जी वर्णी ने ठीक ही लिखा है – अज्ञानरूपी अंधकार के फैलाव को हटाकर यथायोग्य रीति से जैन शासन के महात्म्य का प्रकाश करना, प्रभावना कहलाता है। खाली धन–वैभव, रथ, सोना चांदी, बड़े–बड़े ध्वजा पताका फहराना, बड़े–बड़े जुलूस निकालना, इनसे प्रभावना नहीं होती।

परिग्रही प्रभावना का प्रभाव

आज समाज में सर्वाधिक सम्मानित परिग्रही–प्रभावना के पंच ही हैं। मन्दिर में धर्म के स्थान पर अर्थ की चर्चा तथा अर्चा होने लगी है। जो धर्म कार्य में खर्च कर सकते हैं अथवा करवा सकते हैं, आज उन्हीं की तूती बोलती है।

बड़ा सीधा सादा रास्ता है – आप चाहे जो करें अगर आप 10–15 वर्षो में किसी भी प्रकार से अच्छी खासी पूंजी बना लेते हैं तो फिर मात्र इसके टैक्स से ही आप के सारे पाप धुलवा दिये जायेंगे। इच्छाओं को रोकने और इन्द्रियों को जीतने की जरूरत क्या है जब स्वर्ग के टिकट बोलियों से मिल जाते हैं?

परिग्रह पाप है, अति परिग्रही नियम से नरक जाता है – यह आप मत सुनें। भगवान की प्रतिष्ठा करके ही जब आपको मुक्ति मिल जाने वाली है तो फिर जिनवाणी पढ़ने में माथापच्ची क्यों की जाये? अगर कहीं भूल कर भगवान की बातों पर अध्ययन, मनन, चिन्तन शुरू कर दिया गया तो संभव है कोई–ना–कोई पंच आपसे यह कह दे कि 'जिनवाणी की अविनय कर नरक में क्यों जाते हो?'

बहुत कठिन काल है। सुन्दर पैकिंग में सजा धर्म का माल मात्र डिब्बा भर है। विज्ञापनों में मत उलझिये, भगवान से सीधे बातें करिये, उनकी बतायी बातें पढ़िये एवं गुनिये। लोभ पाप का बाप है, परिग्रह अधर्म का मूल है, क्या हम ऐसा कह भी नहीं सकते?

परिग्रह को महिमा मंडित करने से जैन धर्म का पराभव हो रहा है। अपरिग्रह का चरम स्वरूप ही जैन धर्म है। परिग्रहों को छोड़ने से अनंत सुख प्राप्त करने वाले अरहंत–सिद्धों की हम आराधना करते हैं, परिग्रह से विरत साधुओं का हम सान्निध्य पाते हैं, फिर भी हम लगातार परिग्रह की ही परिक्रमा क्यों लगाते जा रहे हैं?

गरीबी की गरिमा और सादगी का सौन्दर्य कहां है? एक सीधे सच्चे श्रावक को सम्मान मिलना तो दूर रहा, आज एक निस्पृही श्रमण को आगमानुकूल चर्या चलाना भी दूभर हो रहा है।

भ्रष्टाचार, मिलावट, भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा इत्यादि सभी समस्याओं के मूल में परिग्रह–प्रतिष्ठा ही है। जो भी लोग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस प्रवृत्ति को पल्लवित कर रहे हैं, वह पाप का ही पोषण कर रहे हैं।

कुछ लोग बड़ी मासूमियत से कह देते हैं कि हम परिग्रह का नहीं बल्कि उसके त्याग का सम्मान कर रहे हैं। मेरे भोले भाई, तर्कों–वितर्कों से कुछ हासिल होने वाला नहीं है। जरा ध्यान से देखो, यह तथाकथित त्याग समाज को किस कदर खोखला कर रहा है?

अपरिग्रह का आनन्द

'धन सम्पत्ति के बल पर सब कुछ पाया जा सकता है'– इस सर्वव्यापी सोच के विपरीत धर्मपूर्वक अर्थ का उपार्जन करते हुये, सन्तोषवृत्ति से परिग्रह को क्रमशः परिमित करते जाना ही जैनत्व है और ऐसा करते हुए व्यक्ति के आनन्द में उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती है। अपने आराध्य 'सुख के सागर' (परमात्मा) अपरिग्रह के परिपूर्ण पालन के प्रतिफल ही हैं।

परिग्रह अगर पाप का मूल है तो परिग्रह का न्यूनीकरण स्वतंत्रता, स्वावलम्बन, स्वाभिमान एवं सच्चे सुख का स्रोत है। अपरिग्रह का अंगीकरण व्यष्टि से लेकर समष्टि तक समग्र क्रांति करने में सक्षम है।

जैन धर्म एवं कर्म सिद्धान्त में आस्था अर्थात् सम्यक् दर्शन हेतु अपरिग्रह का पाठ हमें अवश्य सीखना होगा लोभ के कारण क्रोध, मान एवं माया उपजते हैं तो परिग्रह के कारण हिंसा, चोरी एवं कुशील पनपते हैं। अपरिग्रह अहिंसा से भी व्यापक है, वस्तुतः आचार में अहिंसा तथा विचार में अनेकान्त हेतु व्यवहार में अपिरग्रह अत्यावश्यक है जिससे कि ब्रह्म जैसी चर्या सहज सम्भव है।

(लेखक व्यवसाय से अध्यापक हैं। वर्तमान सामाजिक परिदृश्य के संदर्भ में उन्होंने अपने विचार रखें हैं, जो मननीय हैं। **रत्नकरण्डश्रावकाचार, पुरुषार्थसिद्धयुपाय** और **अष्टपाहुड़** में अपरिग्रह के महत्व पर विशद विवेचन है। – सम्पादक)

द्वारा डॉ. सुन्दरलाल जैन, वीर मार्ग, ककरवाहा, टीकमगढ़ (म.प्र.)–472001

✧✧✧

Prakrit and Jainism in Interdisciplinary Perspective : by Dr. Gokul Chandra Jain; pub. Research Institute of Prakrit Jainology and Ahimsa, Vaishali-844128; 2010; pp 144; Price Rs. 160/-

Dr. Gokul Chandra Jain is former Head of Department of Prakrit and Jainagama, Sampurnanand Sanskrit University Varanasi. He is an elderly scholar of Prakrit literature and Jainism. In the instant volume 16 illuminating chapters on Prakrit and Jainism are included. The chapter on higher studies and research in Prakrit and Jainology, objectively gives an account of the history of Prakrit Studies, and suggests a mode of planning for higher education and research in Prakrit and Jainology with a scholarly outlook and within the frame of national policy of higher education and research.

Other chapters deal with the Jain Prakrit literature, Mahavira, Yoga in Jain tradition, Jain art and culture, and Jain Sanskrit literature. In the chapter on resources of Jainism for inter-religious dialogue, it has been rightly concluded that Jainism as religious system provides many meeting points for inter-religious dialogue and conveys to the modern world the message of peace and understanding for social good.

The Author as well as the Publishers deserve congratulations for bringing out this useful and thought-giving book.

The World Around : by Mr. Ratan Chandra Gupta; pub. City Montessori School, 12 Station Road, Lucknow; 2014, pp 144.

Mr. Ratan Chandra Gupta is the General Secretary, International Conferences of Chief Justices on Article 51 of the Constitution of India. These conferences are being organized by City Montessori School. The first conference was held on 26 May, 2001. This year during December 13-16, the15th International Conference was held. Mr. Gupta has been convening these conferences since

2001. **"The World Around"** is the compilation of his speeches, editorials and articles with regard to these conferences.

In the preface Mr. Gupta has explained the purpose of these conferences. It is to involve world Judiciary in creating wider awareness for world unity and world peace. Article 51 of our Constitution relates to promoting international peace and security and is a reference point to convey the subject matter for the conference.

Besides giving a detailed account of the mission and activities of the City Montessori School as visualised by founder Dr. Jagdish Gandhi in collaboration with Dr. Bharti Gandhi, Mr. Gupta has dealt with the subject of World Unity and world Peace, in a very scholarly manner. There is no doubt that from childhood itself the temperance for world peace and world unity should be generated. But whatever is happening in our country and in the world around is a disparaging scenario. All the same, thanks are due to Mr. Gupta for so dexterously enlightening on the theme of *Vasudhaiva Kutumbakam* and the significance of Article 51 of the Constitutional of India.

Jain Tirthankaras : Historicity and Antiquity : by Dr. Binod Kumar Tiwary, pub. SKPG Jain Philosophical & Literary Research Centre, 2, Mewadpatanwala Estate, LBS Road, Ghatkopar (W), Mumbai-400086; April 2014; pp. 112; Price R- 150/-

The author Dr. Binod Kumar Tiwary is Associate Professor and Head of Department of History, U.R. College, Rosera (Samastipur). He did his Ph.D. on "Rise and decline of Jainism in Bihar". His book "History of Jainism in Bihar" was earlier published.

In the present book Dr. Tiwary has narrated the historicity and antiquity of Jainism in a rationalistic style, although taking a note of the literary traditions. A brief life-sketch of all the 24 Tirthankaras, beginning with Rishabhadeva and ending with

Mahavira, has been attempted. The brief description, supported by traditional references, may evoke curiosity in the reader to know more about the historical background of the Tirthankaras. The author & publisher deserve compliment for bringing out this introductory book on the Jain Tirthankaras.

जिन–गुणानुवाद–मंजरी (काव्य–संग्रह) : कवि पं. लालचन्द्र जैन 'राकेश'; प्र. सकल दिगम्बर जैन महिला समाज, अयोध्या नगर, मीनाल परिक्षेत्र, भोपाल; 2014; पृ. 182; मूल्य रु. 50/–

जिन–गुणानुवाद–मंजरी में पं. लालचन्द्र जैन 'राकेश' की 111 भक्तिपरक रचनाएं संकलित हैं। रचनाकार 'धर्म दिवाकर', 'सुधांशु' और 'संत कवि' की विरुदों से अलंकृत हैं। हिन्दी और संस्कृत तथा जैन दर्शन के वह निष्णात विद्वान हैं। 1994 में वे म.प्र. में शिक्षण सेवा के अंतर्गत प्राचार्य पद से सेवा निवृत्त हुए और गंज बासौदा उनका स्थायी निवास बना, परन्तु अब वह भोपाल में निवास करते हैं। इस संग्रह में संकलित स्तुतियां आदि दैनिक स्वाध्याय करने योग्य, ज्ञान एवं पुण्य वर्धक, वैराग्योत्पादक, स्मरणीय रचनायें हैं। इनमें उनकी 80–वर्षीय भक्तिपरक भाव व्यंजना का प्रतिबिम्ब लक्षित होता है।

आत्मवृत्तम् : रचयिता पं. लालचन्द्र जैन 'राकेश'; प्र. मां भगवती देवी जैन स्मृति ग्रन्थाकार एवं पारमार्थिक न्यास; 36, भाग्य रेखा, अमृत इन्क्लेव, अयोध्या नगर(बाई पास रोड); भोपाल–462041; वर्ष 2014; पृ. 133; सचित्र; मूल्य रु. 50/–

आत्मवृत्तम् पं. लालचन्द्र 'राकेश' द्वारा पद्यों में रचित उनकी स्वकीय जीवन गाथा है। उन्होंने इसे 'जीवन का दर्पण' के रूप में प्रस्तुत किया है। इनके पौत्र, पुत्रवधु तथा पुत्री के मनोभावों से उनके व्यक्तित्व और जीवन संघर्ष तथा धार्मिक निष्ठा का परिचय प्राप्त होता है। उनके विद्वान मित्र प्रो. डॉ. रतनचन्द्र जैन और पं. निहाल चंद जैन ने भी अपनी प्रस्तावना में उनके व्यक्तित्व की गरिमा को चित्रित किया है।

लेखक ने अपने जीवन का और परिवार का एक संक्षिप्त वृत्त दिया है जिसके अंत में अपना यह भाव प्रकट किया है – "अब मैं जीवन के अंतिम पड़ाव पर हूं। समाधि की प्रतीक्षा में हूं। इसलिए मैं सभी जीवों को क्षमा करता हूं। सभी जीव मुझे क्षमा प्रदान करें। सभी जीवों से हमारी मित्रता है। किसी भी जीव से हमारी शत्रुता नहीं है" और प्रभु से अंतिम प्रार्थना की है कि वे देव–शास्त्र–गुरू के चरणों में नमस्कार रत रहें।

उनके ये भाव उनके जीवन दर्शन को अभिव्यक्त करते हैं। 21 पद्यबद्ध रचनाओं में पं. जी ने अपना जीवनवृत्त लेखबद्ध किया। इस कृति में उनके द्वारा लिखित सम्पूर्ण कृतित्व का विवरण है और परिवार का भी सचित्र परिचय है।

बुन्देलखण्ड जैन तीर्थ दर्शन : प्र. उत्तरांचल दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, "आस्था", 195, आवास विकास सासनी गेट, अलीगढ़

इस पुस्तिका में बुन्देलखण्ड में स्थित अतिशय क्षेत्रों और कलाधामों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। करगुआं, बांसी, पावागिरि, जखौरा, चन्देरी, चांदपुर, देवगढ़, बालाबेहट, सैंरान, मदनपुर, नवागढ़, गिरारगिरि, दरगुवां, कारीटोरन, पपौरा, बड़ागांव (धसान), अहार, बानपुर, बन्धा, द्रोणगिरि, टोढ़ी फतेहपुर, प्यावल, कुण्डलगिरि (कुण्डलपुर), दुधई, सीरोन, फूगोन, गोलाकोट, पचराई, पटेरिया, नैनगिरि (रेशंदीगिरि), सोनागिरि और खजुराहो में स्थित मंदिरों का परिचय दिया गया है।

यह पुस्तिका बड़ौत के श्री सचिन जैन द्वारा उपलब्ध कराई गई है जिसके लिए उन्हें साधुवाद!

भूधर शतक : सं. डॉ. वीर सागर जैन, विशेषार्थ पं. श्री किशनचन्द जैन "भाई साहब", संयोजक श्री महावीर प्रसाद जैन 'स्वतंत्रता सेनानी; प्र. श्री दिग. जैन साहित्य प्रकाशन समिति, 332, स्कीम नं. 10; अलवर–301001; सन् 2014; पृ.; 102 मूल्य 20/

भूधर शतक में कवि भूधर दास के 107 पद संकलित हैं। कवि ने अपना परिचय देते हुए लिखा है कि वे आगरा के भूधर दास खण्डेलवाल थे और उन्होंने यह शतक पौष कृष्ण त्रयोदशी रविवार को विक्रम सं. 1781 में पूरा किया था।

भूधर शतक के **जैन शतक** के नाम से कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इस संस्करण में सम्पादन एवं अनुवाद डॉ. वीर सागर जैन द्वारा किया गया है। इसका विशेष अर्थ पं. किशनचन्द जैन द्वारा किया गया है। इसके संयोजन और प्रकाशन का श्रेय वयोवृद्ध श्री महावीर प्रसाद जैन स्वतंत्रता सेनानी को है।

भूधर दास के इन कवित्तों में जैन दर्शन और आचार का विवेचन किया गया है। प्रस्तुत संस्करण में भूधर के कवित्तों का जो अनुवाद और विशेषार्थ दिया गया है वह इन पदो के शब्दार्थ और भावार्थ को समझने में विशेष रूप से सहायक होगा।

विनय बोधि कण : श्री विनय मुनि जी म.सा.; प्र. श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन संघ, जैन स्थानक भवन (शांति गुरू गार्डन के पास), लोअर बाजार, ऊटी (त.ना.) उदगमंडलम–643001; जनवरी 2004, पृ.310

विनय बोधि कण में श्री विनय मुनि जी "खींचन" द्वारा चातुर्मासों में दिये गये प्रवचनों के आधार पर धर्म के मर्म की व्याख्या की गई है।

जैन धर्म के सम्बन्ध में संक्षेप में विविध प्रकार की जानकारी दी गई है जो सामान्य पाठक को विषय का ज्ञान कराती है और उसमें अधिक जानकारी करने की जिज्ञासा भी पैदा करती है। पुस्तक में बहुत से चित्र भी दिये गये हैं। यह पुस्तक श्री नेमिचंद नाहटा, समर्थ कृपा, 280, बैंक लेन, अन्नदानी बिल्डिंग के सामने, ऊटी 643001 के सौजन्य से प्राप्त हुई जिसके लिए उन्हें साधुवाद!

इष्टोपदेश : (आचार्य पूज्यपाद स्वामी विरचित); प्र. श्री अजित प्रसाद जैन, आगम प्रकाशन, 5373, जैनपुरी, रेवाड़ी–123451 (हरियाणा); जनवरी 2014

आचार्य श्री देवनन्दी पूज्यपाद प्रसिद्ध वैय्याकरण और दार्शनिक विद्वान थे। **इष्टोपदेश** में 51 पद्यों में पूज्यपाद स्वामी ने इष्ट आत्मा के स्वरूप का परिचय प्रस्तुत किया है। मूल संस्कृत पदो के साथ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज द्वारा किया गया पद्यानुवाद और व्याख्या के साथ ही बैरिस्टर चम्पतराय जैन द्वारा किया गया अंग्रेजी अनुवाद जो The Discourse Divine के रूप में प्रकाशित है, को भी इसमें समाहित किया गया है। इस संकलन की प्रेरणा आर्यिका श्री दृढ़मती माता जी द्वारा दी गई थी। "**इष्टोपदेश**" का मुख्य भाव है कि मन के हठाग्रह और दुराग्रह से मुक्त होकर समताभाव को अपनाया जाना श्रेयस्कर है। यह मोक्ष मार्ग को प्रशस्त करने की दृष्टि से कहा गया है परन्तु लौकिक जीवन में शांति का वातावरण बनाये रखने के लिए भी यह आवश्यक है।

मानव धर्म : सं. श्री विनोद कुमार जैन; प्र. श्री अजित प्रसाद जैन, आगम प्रकाशन, रेवाड़ी; पंचम संस्करण; फरवरी 2014; पृ. 240; मूल्य 80/–

मानव धर्म आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी जी द्वारा रचित **रत्नकरण्ड श्रावकाचार** पर आधारित है। संस्कृत श्लोकों के साथ हिन्दी व्याख्या ब्र. भूरामल शास्त्री जो बाद को महाकवि आचार्य श्री ज्ञान सागर जी महाराज के नाम से विख्यात हुए, द्वारा की गई है। पद्यानुवाद आचार्य श्री विद्यासागर महाराज द्वारा, अन्वयार्थ पं. पन्नालाल साहित्याचार्य द्वारा और अंग्रेजी अनुवाद बैरिस्टर श्री चम्पत राय जैन द्वारा किया गया है। इसका

प्रथम संस्करण 1994 में प्रकाशित हुआ था। प्रकाशन की प्रेरणा आर्यिका श्री दृढ़मति माता जी द्वारा दी गई।

जैन आचार्य समन्तभद्र प्रथम शती ई. में हुए थे। उनकी कृति **रत्नकरण्डश्रावकाचार** में 150 श्लोक हैं, जिनमें सम्यक् दर्शन, सम्यग् ज्ञान, अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत, सल्लेखना, प्रतिमा–धारण आदि संयम के प्रकारों का विवेचन किया गया है। इसके परिशिष्ट में प्रभाचन्द्र की टीका से कथाएं भी उद्धृत की गई हैं। ब्र. भूरामल जी/आचार्य श्री ज्ञान सागर जी का परिचय भी दिया गया है। जैन धर्म के नैष्ठिक अनुयायी गृहस्थ द्वारा किस प्रकार अपनी विचारणा और चर्या व्यवस्थित की जाये इसका विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है।

गिरनार–वन्दन : ले. डॉ. रमेशचंद जैन; प्र. भारतवर्षीय दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी; हीराबाग, सी.पी. टैंक, मुम्बई–400004; 2014; पृ. 167; मूल्य 120/–

22वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि की जीवनी से सम्बन्धित गिरनार पर्वत का सन्दर्भ सहित विशद विवरण विद्वान लेखक डॉ. रमेशचन्द द्वारा इस पुस्तक में दिया गया है। वर्तमान में वह नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ़ प्राकृत स्टडीज एण्ड रिसर्च, श्रवणबेलगोला के डायरेक्टर हैं।

गिरनार पर्वत गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र में जूनागढ़ के पास स्थित है। परिशिष्ट में दिनांक 8 व 9 जून 2013 को सम्पन्न गिरनार संगोष्ठी का विवरण भी दिया गया है। गुजरात हाई कोर्ट में विचाराधीन इस जैन तीर्थ पर अतिक्रमण एवं इसके मूल स्वरूप को परिवर्तित करने के प्रयास के सम्बन्ध में विवाद का भी विवरण दिया गया है।

गिरनार के सम्बन्ध में प्रामाणिक साहित्यिक एवं पुरातात्विक विवरण जानने के लिए यह पुस्तक उपयोगी है।

मूल्य और मूल्य चिन्तन : ले. डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन; प्र. श्री अखिल भारतवर्षीय दिग. जैन विद्वत् परिषद; एल.65, न्यू इन्दिरा नगर, बुरहानपुर; प्रकाशन वर्ष 2014; पृ. 48; मूल्य रु. 50/–

विद्वत् परिषद और कृतिकार के परिचय के अतिरिक्त विद्वान लेखक द्वारा जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में समकालीन रचनाकारों के विचारों को प्रस्तुत किया गया है। आचार्य अकलंक देव की **तत्त्वार्थवार्तिक** में प्रतिपादित मानवीय मूल्यों का विवेचन करने के साथ ही आचार्य जिनसेन स्वामी द्वारा रचित **आदिपुराण** में वर्णित नैतिक मूल्यों का विवेचन भी किया गया है, जो चिन्तनपरक है।

श्री राजकुमार शास्त्री की कृतियां :

1 **कर्म विचारे कौन** : इसमें बालकों के लिए 6 नाटकों का संग्रह है।

2 **विलक्षण दशलक्षण** : इसमें दशलक्षण धर्म को स्पष्ट करने हेतु 16 लेख संकलित हैं।

3 **बढ़े सो पावे :** इसमें 12 लेख संकलित हैं जिनमें जैन दर्शन को विवेकपूर्ण दृष्टि से समझने का आग्रह किया गया है और व्यवहार में जीवन को संयमित करने का प्रयास करने की प्रेरणा दी गई है।

4 **बढ़ते भगवान घटते भक्त** : इसमें 14 लघु लेख हैं जिनमें सामाजिक परिदृश्य पर समीक्षात्मक दृष्टि से विचार किया गया है।

ये चारों पुस्तकें समर्पण, ध्रुवधाम, पो. कूपड़ा, जि. बासवाड़ा (राज), से वर्ष 2014 में प्रकाशित हुयी हैं। सभी पुस्तकों में समाज सुधार के प्रति प्रेरणादायक बातें हैं जिन पर चिन्तनशील लोगों द्वारा विचार किया जाना अपेक्षित है।

डॉ. सागरमल जैन की कृतियां :

1 **प्राकृत का जैन आगम साहित्य : एक विमर्श** : इसमें डॉ. सागरमल जैन द्वारा प्राकृत भाषा में उपलब्ध जैन आगम साहित्य का, विशेष रूप से श्वेताम्बर आम्नाय में मान्य साहित्य का, परिचयात्मक विवरण दिया गया है। साथ ही वैदिक और बौद्ध साहित्य की अपेक्षा से तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया है। यह विमर्श 48 पृष्ठों में संयोजित है।

2 **प्राकृत एवं संस्कृत साहित्य के विभिन्न वर्गों से सम्बन्धित जैन आलेख :** इसमें डॉ. सागरमल जैन के 7 लेख संकलित हैं। इनमें जैनों के प्राकृत साहित्य का और संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में जैन श्रमण परम्परा के अवदान का एक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है। अंतिम लेख में जैन दार्शनिक साहित्य का परिचय दिया गया है।

3 **भारतीय संस्कृति के मूल तत्व :** इसमें डॉ. सागरमल जैन के भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित 13 आलेखों का संकलन है। इन आलेखों में भारतीय संस्कृति में निहित जीवन मूल्यों पर विवेचन किया गया है। धार्मिक सहिष्णुता, धर्म निरपेक्षता और

सह–अस्तित्व पर जैन धर्म, बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म की अपेक्षा से विवेचना की गई है। ये आलेख भारतीय संस्कृति के मर्म को समझने हेतु चिन्तन को प्रोत्साहित कर सकते हैं।

डॉ. सागरमल जैन की इन पुस्तकों का प्रकाशन प्राच्य विद्यापीठ, दुपाड़ा रोड, शाजापुर–465001 (म.प्र.) से इसी वर्ष किया गया है। डॉ. सागरमल जैन मेरे समवयस्क हैं। उनका जो परिचय अंतिम टाइटिल पृष्ठ पर दिया गया है वह उनके पांडित्य को प्रदर्शित करता है। उनकी पांडित्यपूर्ण उपलब्धियों के लिए हमारा हार्दिक अभिनन्दन! उनकी सहधर्मिणी श्रीमती कमलाबाई जैन का 80 वर्ष की आयु में दिनांक 8 अक्टूबर, 2014, को देह विलय हो गया; उनके प्रति हमारे श्रद्धा सुमन अर्पित हैं और 82 वर्ष की वय में अकेला हो जाने की स्थिति के लिए डॉ. सागरमल जैन के प्रति हमारी हार्दिक संवेदना है।

डॉ. नेमिचंद जैन की कृतियां :

जैन धर्म परिचय बिन्दुशः, पद जो हरें विपद, आयाम, अनुचिन्तन, अपरिचय, और ज़हर अमृत चुनौतियां :

का प्रकाशन हीरा भैया प्रकाशन, इन्दौर से डॉ. नेमीचंद जैन के अनुज श्री प्रेमचंद जैन द्वारा किया गया है। ये पुस्तिकायें डॉ. नेमिचंद जी के 2001 में दिवंगत होने के उपरांत श्री प्रेमचंद जैन द्वारा अपने अग्रज की स्मृति को चिरस्थायी करने के अभिप्राय से की गई हैं। पुस्तिकायें चिन्तन–मनन के लिए उपयोगी हैं और इनके प्रकाशन के लिए श्री प्रेमचंद जैन को साधुवाद!

परिक्रमा : ले. डॉ. परमानन्द जड़िया; प्र. मधूलिका प्रकाशन, 189/51, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ–226018; दिसम्बर 2014; पृ. 64; मूल्य रु. 60/–

परिक्रमा में साहित्य–भूषण डॉ. परमानन्द जड़िया की 28 मुक्तक रचनायें संकलित हैं। उनका यह 108वां प्रकाशन है। 88 वर्ष की वय में भी वे रचना–धर्मिता का निर्वाह कर रहे हैं। "आत्म–निवेदन" और "वेदना" में उन्होंने अपने जो मनोभाव व्यक्त किये हैं वे मर्मस्पर्शी हैं। कुछ रचनायें आराध्य को समर्पित हैं और कुछ में सामयिक परिदृश्य पर चिन्तन–परक विचार है। डॉ. जड़िया के प्रति हमारी संवेदना है और यह कामना है कि वे सामान्यतः स्वस्थ रहकर रचना–धर्मिता में प्रवृत्त रहें।

– डॉ. शशि कान्त

आभार

डॉ. शशि कान्त और सौ. मंजरी जैन ने अपनी प्रपौत्री के शुभागमन पर रु. 500/– भेंट किये। उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री शिरीष कान्त एवं पुत्रवधु सौ. रागिनी जैन के ज्येष्ठ पुत्र चि. शिशिर एवं पुत्रवधु सौ. खुशबू जैन को 23 नवम्बर 2014 को कन्या–रत्न की प्राप्ति हुई।

श्री सुरेश चन्द्र एवं सौ. कनकलता जैन, मसूरी, ने अपने पौत्र चि. शशांक (चि. अरुण एवं सौ. अचला जैन के सुपुत्र) का आयु. शीनम के साथ 30 नवम्बर को शुभ विवाह सम्पन्न होने के उपलक्ष में रु. 200/– भेंट किये।

अभिनन्दन

हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार 88–वर्षीय **डॉ. परमानन्द जड़िया** के गद्य साहित्य पर शोध छात्रा सुमन वर्मा ने पी–एच.डी. के लिए अपना शोध–प्रबन्ध डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद, में प्रस्तुत किया था। शोध–प्रबन्ध में डॉ. जड़िया की कहानियों, उपन्यासों, नाटकों, संस्मरणों, लेखों, समीक्षाओं की विशद विवेचना 450 पृष्ठों में की गई है। निर्देशन श्री शिवमोहन सिंह, पूर्व कुलपति, अवध विश्वविद्यालय ने किया। डॉ. जड़िया के साहित्य का परिचय **शोधादर्श** में प्रायः दिया जाता रहा है।

डॉ. राजेन्द्र कुमार अग्रवाल (हरिद्वार) की पुत्रवधु **सौ. शिवानी** (श्री अखिल अग्रवाल की पत्नी) का उत्तराखण्ड के प्राविंशयल सिविल सर्विस में चयन हुआ।

कु. मेहा जैन (श्री नलिन कान्त जैन एवं सौ. मोहिनी जैन की सुपुत्री) ने क्लीनिकल साइकोलॉजी में एम.फिल. परीक्षा किंग जार्ज मेडिकल यूनीवर्सिटी, लखनऊ, से सर्वोच्च अंकों के साथ प्रथम स्थान पर उत्तीर्ण की।

श्री अरविन्द कुमार जैन, इन्दौर, को देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर, ने इनके शोध–प्रबन्ध 'मध्य प्रदेश के जैन संस्कृति अभिलेखों का अध्ययन' पर पी–एच.डी. की उपाधि प्रदान की।

श्रीमती कविता जैन को हरियाणा प्रदेश में भारतीय जनता पार्टी के मंत्रिमण्डल में मंत्रिपद दिया गया।

डॉ. महावीर सरन जैन को उ.प्र. हिन्दी संस्थान द्वारा हिन्दी में उत्कृष्ट साहित्य सृजन के लिए पुरस्कृत किया गया।

डॉ. सुनील जैन 'संचय', ललितपुर, को जैन पत्रिकारिता के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए श्रुत संवर्धन संस्थान द्वारा "आचार्य विमल सागर जी (भिण्ड) स्मृति श्रुत संवर्धन पुरस्कार 2013" प्रदान किया गया।

8 जून को **प्रो. कमलचंद सोगानी** (जयपुर) एवं **प्रो. राम प्रकाश पोद्दार** (पुणे) को श्रवणबेलगोला में बाहुबलि प्राकृत विद्यापीठ द्वारा "ज्ञान भारती अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार" प्रदान किये गये।

13 जुलाई को अजमेर में **श्री सतीश जैन** (आकाशवाणी को) प्रथम "आचार्य विद्यानन्द पुरस्कार" प्रदान किया गया।

पद्मश्री डॉ. एस.आर. मेहता को शिक्षा चिकित्सा पर्यावरण के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए जैन विश्व भारती, लाडनूं, द्वारा दिल्ली में अध्यात्म साधना केन्द्र महरौली में 1 अगस्त को हुये समारोह में आचार्य महाश्रमण की मौजूदगी में "प्रज्ञा पुरस्कार" से सम्मानित किया गया और प्राकृत भाषा के मनीषी प्रो. प्रेमचंद जैन को भी "आचार्य तुलसी प्राकृत पुरस्कार" से समानित किया गया।

10 अगस्त को राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान द्वारा 'संस्कृत सेवाव्रती सम्मान' से **डॉ. हुकुमचंद भारिल्ल** को सम्मानित किया गया।

डॉ. फूलचंद जैन 'प्रेमी' को 12 अक्टूबर को जैन क्लब परिसंघ, सतना, द्वारा "जगदीश राय जैन प्रतिभा सम्मान" से अलंकृत किया गया।

नवम्बर में हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार समीक्षक भाषाविद् **डॉ.जय कुमार 'जलज'** (रतलाम) को हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का राष्ट्रीय अध्यक्ष मनोनीत किया गया।

11–13 नवम्बर को राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली, में इण्डियन आर्ट हिस्ट्री कांग्रेस के 23वें वार्षिक अधिवेशन में **डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव** को सम्मानित किया गया। डॉ. श्रीवास्तव को 'प्रो. के.डी. बाजपेई मेमोरियल लेक्चर' के लिए आमंत्रित किया गया था। डॉ. श्रीवास्तव प्राचीन भारतीय कला के विशिष्ट एवं वरिष्ठ विद्वान हैं। उनके लेख आदि **शोधादर्श** में प्रकाशित होते रहते हैं।

22 नवम्बर को वासु (सूरत), गुजरात, में अखिल भारतीय जैन पत्र सम्पादक संघ के त्रैवार्षिक अधिवेशन में वरिष्ठ पत्रकार एवम् विचारक **श्री रवीन्द्र मालव** को संघ का राष्ट्रीय अध्यक्ष निर्वाचित किया गया।

कोलकाता में 7 दिसम्बर को सोहम एस्ट्रोलॉजी सोसायटी द्वारा **श्री चन्द्र प्रकाश जैन** (लखनऊ/सिलीगुडी) को ज्योतिष विद्या में प्रवीणता के लिए "महर्षि भृगु पुरस्कार" से सम्मानित किया गया।

शोधादर्श का समस्त परिवार और तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति उपरोक्त सभी महानुभावों का उनकी यश–वृद्धि के लिए हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

शोक संवेदन

15 जुलाई 2014 को जैन समाज के वरिष्ठ पत्रकार 84–वर्षीय **श्री जिनेन्द्र कुमार जैन** का अहमदाबाद में निधन हो गया। उन्होंने 'यंगलीडर' और 'जिनेन्दु' का प्रकाशन सफलतापूर्वक किया। 1964–65 वे पत्रकारिता से सम्बद्ध हुये। लखनऊ में भी उनका अभिनन्दन किया गया था। उनके सम्मान में 'जिनेन्दु' का 17 अगस्त का अंक विशेष रूप से प्रकाशित हुआ।

13 सितम्बर को **शोधादर्श** के सुधी पाठक श्री इन्द्र नारायण त्रिपाठी की 84–वर्षीया पत्नी **श्रीमती सरस्वती त्रिपाठी** का लखनऊ में निधन हो गया।

16 दिसम्बर को आरा में 83–वर्षीय विद्वान–मनीषी **डॉ. दानेन्द्र चन्द जैन** का निधन हो गया। वह जैन कॉलेज, आरा, में विभागाध्यक्ष रहे थे और आरा की सामाजिक गतिविधियों में उनका विशिष्ट योगदान था।

वरिष्ठ साहित्यकार एवं वरेण्य विद्वान 78–वर्षीय **डॉ. गोपीलाल 'अमर'** का दिल्ली में 8 जून को निधन हो गया था।

उपरोक्त सभी दिवंगत महानुभावों के प्रति शोधादर्श परिवार की भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित है और शोक से संतप्त परिवारों के प्रति हार्दिक संवेदना निवेदित है।

– नलिन कान्त जैन

✧✧✧

समाचार विविधा

कुण्डलपुर (दमोह) में बड़े बाबा के नये मन्दिर का निर्माण

कुण्डलपुर (दमोह) में बड़े बाबा के नये मन्दिर के निर्माण के सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 9–5–2011 के निर्णय के संदर्भ में श्री पानाचंद जैन ने सूचित किया है कि जैन संस्कृति रक्षा मंच की ओर से जुलाई 2014 में रिव्यू पिटीशन प्रस्तुत कर दी गई थी। उन्होंने यह भी सूचित किया है कि कुण्डलपुर ट्रस्ट द्वारा जो आगम सर्वोच्च न्यायालय में रेफर किया गया है, वह जैन आगम नहीं है और उसमें शिवलिंग की स्थापना की बात कही गई है। इस सम्बन्ध में श्री हेमचंद काला ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किये थे। श्री पानाचंद जैन का लेख **जैन गजट** दिनांक 15–12–2014 में प्रकाशित हुआ है। जो बिन्दु श्री पानाचंद जैन द्वारा अपने लेख में प्रस्तुत किये गये हैं वे विचारणीय हैं।

महावीर निर्वाण दिवस

लखनऊ नगर निगम द्वारा दिनांक 23–10–2014 को महावीर निर्वाण दिवस के दिन लखनऊ नगर सीमा के अंतर्गत समस्त वध–शालाओं एवं मांस बेचने वाली समस्त दुकानों को अनिवार्य रूप से बंद रखे जाने की आवश्यक सूचना प्रसारित की गई।

जैन इंडिया ट्रस्ट

श्री सुगालचंद जैन, चेन्नई, ने सूचित किया है कि चेन्नई में 'जैन इंडिया ट्रस्ट' का गठन किया गया है। इस ट्रस्ट द्वारा तमिलनाडु में प्रवासित जैन भाई–बहनों के लिए छात्रवृत्ति तथा विधवाओं एवं असहाय महिलाओं हेतु पेन्शन प्रदान करने की व्यवस्था की गयी है।

जैन मिलन लखनऊ

जैन मिलन लखनऊ द्वारा दिनांक 20 जुलाई को वीर शासन जयंती के अवसर पर श्री राजीव जैन (सुपुत्र स्व. श्री नरेशचंद जैन) को उनकी सामाजिक कार्यों में अभिरुचि को लक्षित करते हुये 'मिलन उपलब्धि सेवा सम्मान 2014' प्रदान किया गया।

दिनांक 14 सितम्बर को डॉ. (श्रीमती) प्रियदर्शना जैन, अध्यक्ष, जैनोलॉजी विभाग, मद्रास यूनीवर्सिटी, चेन्नई, को विश्व मैत्री दिवस के उपलक्ष में 'विश्व मैत्री सेवा सम्मान 2014' प्रदान किया गया।

दिनांक 23 नवम्बर को श्री लूणकरण नाहर जैन द्वारा श्री महावीर जैन स्थानक, पटेल नगर, आलमबाग, में आहूत जैन मिलन की बैठक में श्री नाहर और श्री बसंत राज जैन तथा कुछ अन्य श्रावक–श्राविकाओं द्वारा भजन प्रस्तुत किये गये। विशेष आमंत्रित डॉ. शशि कान्त जैन द्वारा अपने उद्बोधन में यह आग्रह किया गया कि समस्त जैन समाज को आम्नाय या पंथ का आग्रह छोड़कर जैन धर्म की उन शिक्षाओं का पालन करने के लिए प्रेरित किया जाये जो समाज में एकता, सद्भाव और मैत्री का संचार करें। उन्होंने यह भी बताया कि जैन मिलन की स्थापना का प्राथमिक उद्देश्य यही था कि सभी जैन धर्मावलम्बी एक साथ आ सकें और सेवा या व्यापार के सिलसिले से जो लोग किसी नये स्थान पर जायें वे परस्पर मिल सकें और जैन धर्मावलम्बी होने की एकता का अनुभव कर सकें।

"जैन संस्कृति के विविध आयाम" पर राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी

दिनांक 13 व 14 सितम्बर को बाराबंकी में मुनिश्री सौरभ सागर जी की प्रेरणा से एवं उनके सान्निध्य में "जैन संस्कृति के विविध आयाम" पर राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी का आयोजन किया गया। 4 सत्रों में 25 विद्वानों के विद्वत्तापूर्ण आलेखों का वाचन हुआ। प्रो. विजय कुमार जैन, प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, पं. विनोद जैन और डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती' ने सत्रों का संचालन किया। डॉ. श्रीमती राका जैन ने संगोष्ठी का विवरण प्रस्तुत किया।

✧✧✧

पाठकों के पत्र

श्री अजित जैन 'जलज', ककरवाहा, टीकमगढ़

आपके पूर्वजों एवं आपने जैन धर्म के लिए ऐतिहासिक कार्य किया है और मुझे **शोधादर्श** से जुड़कर आत्मिक आनन्द प्राप्त होता है।

डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव, भिलाई

प्रस्तुत अंक के आवरण पर ओसिया के महावीर मंदिर का चित्र अत्यंत नयनाभिराम है। आवरण पृष्ठों पर इस प्रकार के चित्रों को प्रदर्शित करने की परम्परा डालकर आपने **शोधादर्श** में अभिनव आकर्षण उत्पन्न कर दिया है।

गुरुगुण–कीर्तिन स्तंभ के अन्तर्गत डॉ. शशि कान्त का आचार्य तुलसी सम्बन्धी लेख अत्यंत ज्ञानवर्द्धक है। **तुलसी–प्रज्ञा** जर्नल तथा उनकी **अणुव्रत पत्रिका** के माध्यम से कभी मैं भी जैन विश्वभारती, लाडनूं के सम्पर्क में रहा। शायद इसीलिए यह आलेख मुझे विशेष अच्छा लगा।

भाई रमा कान्त का लेख जैन पत्र–पत्रिकाओं के सम्पादन–प्रकाशन से जुड़े व्यक्तियों के लिये एक सशक्त उद्‌बोधन है। डॉ. परमानन्द जड़िया, श्री अमरनाथ तथा श्री मुक्तेश जैन 'सरस' की काव्य रचनाओं ने ध्यान आकर्षित किया।

श्री राजीव कान्त जैन की कृति **'सोनचिरैया फिर चहकेगी'** तथा उसके लोकार्पण के समाचार ने भारतीय प्राचीन जीवन की विरासत के प्रति जीवन्त आशा जगायी है। इससे जुड़े छाया–चित्रों ने पत्रिका की महत्ता द्विगुणित कर दी। कविता की अकेली यह पंक्ति 'सोनचिरैया फिर चहकेगी' ही अपने में श्री राजीव कान्त जैन के नव गीतकार का परिचय देती है। हमारी शुभ कामना है कि वे अपनी ऐसी ही भास्वर रचनाओं से समाज और देश का भविष्य संवारेंगे। कुल मिलाकर **शोधादर्श** वास्तव में शोधादर्श है।

श्री कैलाश नारायण टन्डन, कानपुर

शोधादर्श का 79वां अंक भी पूर्ववर्ती अंकों की भांति सिद्धहस्त लेखकों और रचनाकारों की मननीय एवं प्रशंसनीय कृतियों से समृद्ध है। मुखपृष्ठ पर ओसिया में स्थित प्रसिद्ध महावीर मन्दिर का चित्र जैन मूर्ति एवं पाषाण कला का अनूठा उदाहरण है।

डॉ. शशिकान्त जैन का 'जैन संत आचार्य तुलसी' पर लेख वास्तव में उच्चकोटि की दुर्लभ सामग्री और बोधगम्य आकर्षक लेखन शैली का प्रतिनिधित्व करता है।

डॉ. परमानन्द जड़िया की काव्य रचना "बोलिये! कैसे बचेगा धर्म" सामाजिक एवं राजनैतिक परिवेश पर तीखा व्यंग्य है।

श्री कृपाशंकर शर्मा का गीत 'जीवन चलता फिरता मेला' में कवि ने अपनी भावनाओं को बड़े सहज एवं मर्मस्पर्शी ढंग से व्यक्त किया है।

डॉ. चेतन प्रकाशन पाटनी, जोधपुर

शोधादर्श 79 की सभी सामग्री पठनीय है। श्री अजित जैन 'जलज' के लेख "भक्ष्य/अभक्ष्य : चिन्तन अपेक्षित" ने विशेष प्रभावित किया। "बोलिए! कैसे बचेगा धर्म" कविता भी वर्तमान स्थिति का यथार्थ निदर्शन करती है।

श्री प्रेमचंद जैन, हीरा भैया प्रकाशन, इन्दौर

सीमित साधनों में आप जो सब कर रहे हैं, प्रेरक है।

श्री बालकवि बैरागी, कविनगर, मनासा (म.प्र.)

शोधादर्श 79 मिला। कई जानकारियां नयी मिलीं। आपकी कृपा सुखद रही।

श्री बी.डी अग्रवाल, लखनऊ

शोधादर्श 79 में ओसिया में स्थित प्रसिद्ध महावीर मन्दिर का चित्र देखकर उसकी सुन्दरता का आभास हुआ।

पत्रिका का रूप निखर रहा है। उसके लिए मार्गदर्शक तथा सम्पादक मण्डल के सदस्य बधाई के पात्र हैं।

आचार्य तुलसी के विषय में आपके लेख, श्री कृपा शंकर शर्मा 'अचूक' की कविता 'जीवन चलता फिरता मेला', डॉ. ए.एल श्रीवास्तव के खोजपूर्ण लेख 'जैन मूर्ति कला में गणविघ्नेश का अंकन' और श्री ललित कुमार नाहटा के लेख 'भांडासर जैन मन्दिर' की जितनी प्रशंसा की जाये थोड़ी ही होगी।

अपनी जिम्मेदारियां निभाते हुए श्री राजीव कान्त जैन की साहित्य साधना ऐसी ही बनी रहे, यही शुभ कामना है।

ईश्वर से प्रार्थना है कि 'ज्योति निकुंज' विद्वानों की जन्मस्थली बनी रहे, ऐसी कृपा बनाये रखें।

मुनि महेन्द्र सागर जी, द्वारा जैन विज्ञान एवं प्रबन्धन संस्थान, रायपुर

शोधादर्श 79 (जून 2014) पत्रिका पढ़ने में आई। अनुमोदनीय विषय देखकर प्रसन्नता हुई। पत्रिका को हमेशा भिजवाते रहें।

डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

शोधादर्श–78 श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को उद्भूत वीर शासन दिवस को प्रधानतः समर्पित है। सम्पादकीय के साथ डॉ. ज्योति प्रसाद जी जैन का 'जीयात् श्री वीरनाथस्य शासनम्' और डॉ. शशि कान्त जी जैन का 'वीर–शासन का जन्म स्थान राजगृह' आलेख विद्यमान संदर्भ में बहुत ही ज्ञानवर्धक, प्रेरणास्पद एवं शोधपूर्ण हैं। यह दुखद है कि भ्रांत धारणा के आधार एक प्रभावी एवं देशना देने वाले आचार्यश्री ने "वीर शासन जयवन्त हो' के स्थान पर 'नमोस्तुशासन जयवन्त हो' का नारा देकर वीर शासन के उच्छेद का खतरा पैदा किया है। विश्वास है कि उक्त आलेख मार्गदर्शक का कार्य करेंगे। 'भगवान महावीर का संघ परिवार' आलेख में श्री अजित प्रसाद जी जैन का यह समाधान सहज ग्राह्य है कि समवसरण सभा में केवलज्ञानी भगवान गणधरों के बैठने के स्थान से नीचे क्यों बैठते हैं। विनय का यह सन्देश मानव विकास और अहंकार के विसर्जन हेतु उपयोगी है। श्री बी.पी. सिन्हा जी का 'Hindu View of Vegetarianism' चिन्तनशील रचना है। इसका प्रकाशन हिन्दी में होता तो अधिक व्यक्ति लाभान्वित होते।

आचार्य कुन्द–कुन्द ने इच्छा को परिग्रह कहा है और कषाय परिग्रह ही है। अंतर–बाह्य त्याग पूर्वक जिनेश्वरी दीक्षा होती है। आगम के अनुसार एक सूत की इच्छा/परिग्रह निगोद ले जाती है। डॉ. शशि कान्त जी ने साहसपूर्वक 'कषाय और परिग्रह' आलेख में साधुत्व की आड़ में पनप रही कुप्रवृत्तियों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। अब तो सच्चाई से रूबरू होने से विद्वान संकोच करने लगे हैं। सामाजिक संस्थाओं ने भी अपने कार्यक्रम और विरासत विस्मृत कर दी है व कर रही हैं। अ.भा.दि. जैन परिषद ने चौबीस लाख में मूर्ति विक्रय का विषय अपने संज्ञान में नहीं लिया। दीक्षाधारी का जीवन पारदर्शी, पक्षपात विहीन और संस्थागत गतिविधियों से ऊपर होना अपेक्षित है। इस अंक के अन्य सभी आलेख, कविताएं और स्थायी स्तम्भ स्तरीय एवं प्रेरक हैं।

भाई डॉ. शशि कान्त जी एवं भाभी श्रीमती मंजरी जैन के सुखी दाम्पत्य जीवन की हीरक जयंती मनायी गयी और सचित्र प्रकाशन किया गया, प्रमोद है। हमारी ओर से उनका अभिनन्दन/वन्दन। वे दीर्घायुष्य हों और आत्म विकास के साथ समाज/राष्ट्र के मंगल में वृद्धि करें, यही भावना है। उनका समर्पित परिवार अमूल्य निधि है। सभी का अभिनन्दन!

शोधादर्श के अंक 79 में सम्पादकीय संकल्प प्रशंसनीय है, जिसके अनुसार शोधकर्ताओं के शोध कार्य का सार प्रकाशित किया जायेगा। इस अंक के सभी आलेख मननीय हैं। डॉ. शशि कान्त जी का गुरुगुण–कीर्तन, आचार्य तुलसी के सम्पूर्ण कृतित्व और बहुआयामी व्यक्तित्व को प्रकाशित करता है। आचार्य तुलसी सृजनशीलता के धनी थे। तेरापंथ सम्प्रदाय में उनका बहुत प्रभाव और बहुमान था। जैन आगम और ध्यान के क्षेत्र में आचार्य तुलसी का योगदान स्मरणीय रहेगा।

डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का शोधपरक आलेख 'जैन इतिहास विषयक भ्रांतियों का निरसन' हमारी घोर उदासीनता की ओर इंगित करता है। साहित्य व संस्कृति के प्रति जागरूकता एवं रुझान से ऐसी विसंगतियों से बचा जा सकता था। अभी भी समाज का नेतृत्व पूजा–पद्धति, पंथवाद और पुरातत्व के ध्वंस के नाम पर अपना समय/साधन लगा रहा है जब कि पाठ्य पुस्तकों में भगवान महावीर को जैन धर्म का संस्थापक पढ़ाया जा रहा है। समय से समाज कितना बेखबर है, यह इससे पता चलता है। समाज सुधार एवं धर्म की मर्यादा की रक्षा में साधुजनों का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है बशर्ते कि उन्हें अपनी पत्रिकाओं, धामों, अंचलों और प्रोजेक्ट्स से समय मिले। सम्पन्न वर्ग की शरण में होने से समाज–संस्कृति, धर्म, शिक्षा–संस्कार गौण हो गये। अजित प्रसाद जी ने उचित ही 'समाज सुधार में धर्म गुरुओं की भूमिका' रेखांकित की है।

पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव में हमारे साधुजन के अश्लील चित्र भी छपने लगे हैं। भाई रमाकान्त जी ने अपने आलेख में इस ओर ध्यान आकर्षित किया है। विश्वास है, सद्–विवेक जाग्रत होगा।

डॉ. ए.एल श्रीवास्तव का आलेख 'जैन मूर्ति कला में गणविघ्नेश का अंकन' जैन कला की सहिष्णुता को दर्शाता है। मेरा उनसे अनुरोध है कि वैदिक परम्परा में जैन संस्कृति/प्रतीकों के अंकन के उदाहरणों से हमारा ज्ञान वर्द्धन करें। नाहटा जी का आलेख 'भांडासर जैन मंदिर' जैन

धर्मावलम्बियों के त्याग, कला–रुचि एवं अहिंसक भावना को रेखांकित करता है।

श्री अजित जैन 'जलज' का 'भक्ष्य–अभक्ष्य' पर आलेख चिन्तनीय है। समग्रता में जैनाचार दया और अहिंसा मय है। अपरिहार्य हिंसा भी न्यूनतम हो, इसका पक्षधर है। यह दिखावा या लोकाचार का नहीं किन्तु परिणामों की पावनता का धर्म है। सभी एकेन्द्रियादि स्थावर वनस्पति भक्ष्य नहीं है। प्रत्येक के भेद प्रभेद हैं। मूल बिन्दु अंतरंग दया भाव का है, यह महत्वपूर्ण नहीं है कि दया का पात्र कौन जीव है। जैन दर्शन की विशुद्ध अहिंसक आहार की अवधारणा अद्भुत है। यह हमारे जीवन का अंग बने, इस दिशा में चिन्तन, होना चाहिये। आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार ने जो चित्रण किया, तब से अब गंगा का पानी बहुत प्रदूषित हो गया। लेखक के सुझाव अनुकरणीय हैं।

प्रशासक, श्री राजीव कान्त की काव्य कृति '**सोनचिरैया फिर चहकेगी**' का लोकार्पण हुआ, हमारी ओर से बधाई! वे अपनी क्षमताओं का उपयोग लोकहित में करें, यही भावना है। **शोधादर्श** के पाठकों को भी सोनचिरैया की चहक से अनुभूत करावें। डॉ. रत्नलाल जैन और लेखक डॉ. बंसल के आलेख चिन्तनीय हैं। इनका लाभ जीवन के रूपांतरण में होगा, ऐसी अपेक्षा है।

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति का प्रतिवेदन देखा। उत्तरांचल रिलीफ फंड में रु. ग्यारह हजार की सांकेतिक सहायता देकर प्रशंसनीय कार्य किया। उदात्त चिन्तन को नमन! अन्य संस्थाएं/समितियां भी इस समिति से प्रेरणा लेकर अपना प्रतिवेदन और आय–व्यय पत्रक प्रकाशित करें तो समाज और संस्थाओं की प्रामाणिकता और पारदर्शिता में वृद्धि होगी। अंक के सभी स्तम्भ श्रमसाध्य, सूचनाप्रद और समय–के–दर्शक हैं।

आवश्यक सूचना

वार्षिक शुल्क 60 रु. (साठ रुपये), **'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.,ज्योति निकुंज,चारबाग, लखनऊ–226004',** को 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति' के नाम लखनऊ में देय चेक अथवा ड्राफ्ट द्वारा भेजने का अनुग्रह करें। मनीआर्डर से भेजने पर उसकी सूचना एक पोस्टकार्ड पर भी अपने पूरे नाम व पते के साथ अवश्य भेजें। विदेशों के लिए पत्रिका का वार्षिक शुल्क 25 डालर है।

शोधादर्श अब षड्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक जून–अन्त और दिसम्बर–अन्त में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहियें। यथासम्भव लेख 3–4 टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख–रचना लौटाना कठिन होगा।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को **ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004,** के पते पर भेजे जायें।

प्रत्यावर्तन में पत्रिका की केवल एक प्रति सम्पादक को उपरोक्त पते पर भेजी जाये।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेख में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

– **सम्पादक**

शोधादर्श के आजीवन अभिदाता

1 श्री अवनीश गर्ग जैन एवं श्रीमती रेखा गर्ग, लखनऊ–226001
2 डॉ. आर. के. अग्रवाल, लखनऊ–226012
3 डॉ. (श्रीमती) इन्दु रस्तोगी, लखनऊ–226010
4 डॉ. एस.के. जैन, लखनऊ–226010
5 श्री कमल सिंह रामपुरिया, हावड़ा–711101
6 डॉ. (श्रीमती) कुसुम पटोरिया, नागपुर–440001
7 श्री के.एस. पुरोहित, गांधी नगर–382009
8 प्रो. के.डी. मिश्रीकोटकर, चांदुर बाजार–444704
9 श्री चक्रेश जैन, इन्दौर–452018
10 श्री ब्र. जयनिशान्त जैन, टीकमगढ़–472001
11 डॉ. जितेन्द्र बी. शाह, अहमदाबाद–380001
12 श्री प्रद्युम्नश्री महाराज (द्वारा श्री जितेन्द्र कापड़िया), अहमदाबाद–380007
13 श्री प्रवीन कुमार जैन, नई दिल्ली–110002
14 मुनिश्री प्रमाणसागरजी (द्वारा श्री संतोषकुमार जयकुमार),सागर–470002
15 श्री भरत कुमार मोदी, इन्दौर– 452001
16 श्री माणिक चन्द्र जैन लुहाड़िया, कुन्दकुन्द नगर, सोनागिर–475686
17 श्री रूप चन्द जैन कटारिया, नई दिल्ली–110001
18 श्री ललित सी. शाह, अहमदाबाद–380014
19 मुनिश्री विमलसागर जी (द्वारा डॉ. शैलेन्द्र हरण जी), उदयपुर–313001
20 श्री विवेक काला, जयपुर–302004
21 श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, गाजियाबाद–201010
22 श्री मुकेश जैन, एडवोकेट, मुजफ्फरनगर–251002
23 श्री वेद प्रकाश गर्ग, मुजफ्फरनगर– 251002
24 श्री शान्तीलाल जैन बैनाड़ा, आगरा–282002
25 श्री श्रीकिशोर जैन एवं श्री शरद कुमार जैन, दिल्ली–110051
26 श्री सतीश कुमार जैन, नई दिल्ली–110070
27 श्री ब्र. सन्दीप सरल, बीना–470113
28 श्री सुरेश चन्द्र जैन, मसूरी–248179
29 श्रीमती त्रिशला जैन शास्त्री, लखनऊ–226004
30 श्री ज्ञानेन्द्र मोहन सिन्हा, लखनऊ–226006

वर्ष 2014 का वार्षिक शुल्क प्रदायी पाठक

1 श्री अशोक कुमार जैन, सतना
2 श्री आदेश्वर प्रसाद जैन, सिकन्दराबाद
3 श्री इन्द्र कुमार साटीया, हुबली (2018 तक)
4 श्री कैलाश नारायण टन्डन, कानपुर
5 श्री दुलीचंद जैन, चेन्नई
6 श्री धनप्रकाश जैन, मेरठ (2015 भी)
7 श्री पद्मराज कुमार जैन, आरा
8 श्री पवन कुमार जैन, पुणे,
9 बी.एस.एम. (पी.जी.) कॉलेज, रुड़की
10 श्री मगनलाल जैन, लखनऊ
11 श्री महेशचंद जैन, सिकन्दराबाद (उ.प्र.)
12 श्री महेश नारायण सक्सेना, लखनऊ (2016 तक)
13 श्री रतन चन्द्र गुप्ता, लखनऊ
14 श्री रवि प्रकाश जैन, लखनऊ
15 श्री विनय कुमार जैन, मशकगंज, लखनऊ (2015 भी)
16 डॉ. बिनोद कुमार तिवारी, रोसड़ा
17 श्री सचिन जैन, बड़ौत
18 अपभ्रंश साहित्य एकेडेमी, जयपुर
19 श्री मुक्तेश जैन 'सरस', कुरावली
20 श्रीमती अनीता जैन, लखनऊ

✧ ✧ ✧

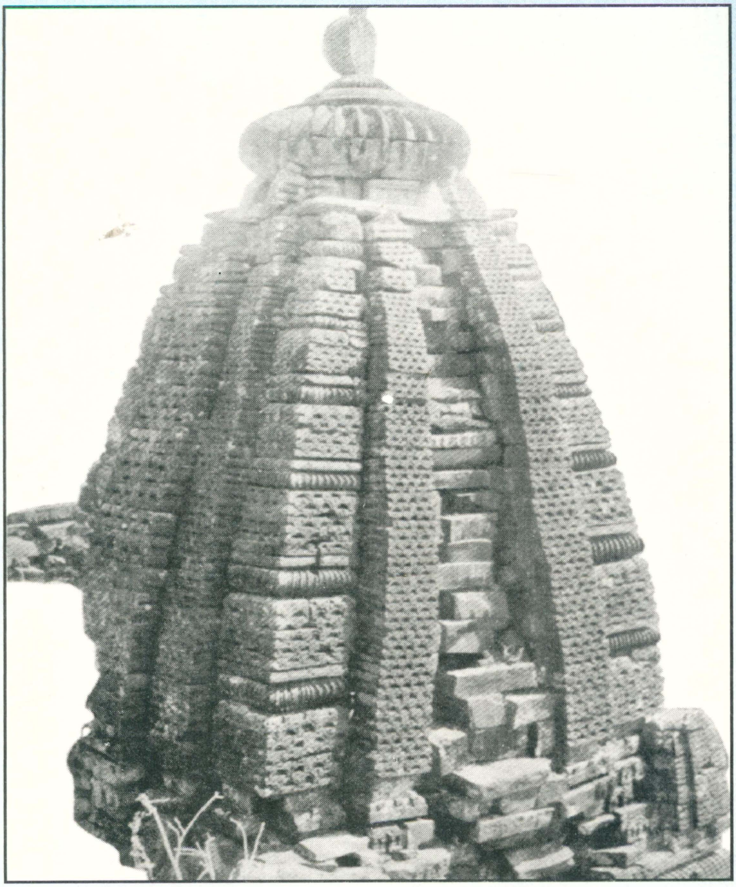

ग्यारसपुर (जिला विदिशा) में मालादेवी मन्दिर

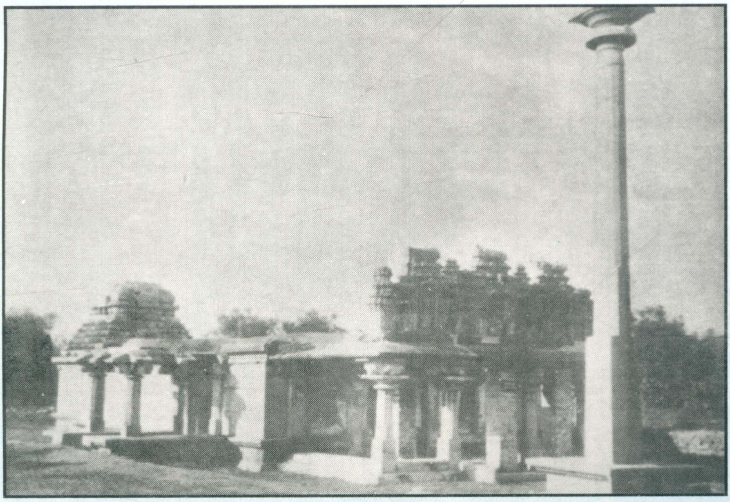

विजयनगर साम्राज्य की राजधानी हम्पी में गणिगित्ती मन्दिर